सादगी की ओट से

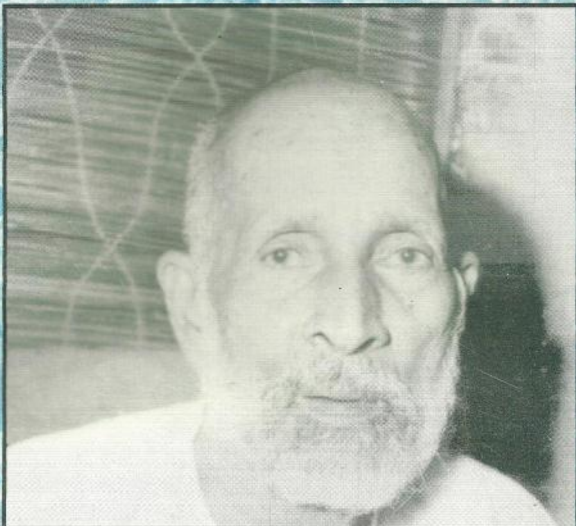

श्री बाबू जी महाराज

कस्तूरी बहिन

सादगी की ओट से

कस्तूरी बहिन

प्रथम संस्करण : जनवरी, 2004
500 प्रतियाँ

मूल्य : **Rs. 50/-**

प्रकाशक : श्री जी. डी. चतुर्वेदी
सी. 830 ए, 'पारिजात'
एच. रोड, महानगर,
लखनऊ (उ.प्र.)

सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक : एन्टेक्स प्रिंटर्स
10–ए, बटलर रोड, डालीबाग,
लखनऊ (उ.प्र.)
दूरभाष : 0522–2205070, 2207920
फैक्स : 0522–2205070

कस्तूरी बहिन

विषय-सूची

		पृष्ठ सं.
1.	सन्देश (श्री बाबू जी का)	1
2.	दो शब्द	5
3.	एक परिचय – दिव्य–विभूति का	7
4.	श्री रामचन्द्र मिशन	11
5.	सहज–मार्ग साधना पद्धति	13
6.	प्रशिक्षक	23
7.	दैविक–प्रशिक्षण	25
8.	अनुपम कृपा एवं अद्वितीय दैविक–शक्ति	30
9.	भूमा	33
10.	सादगी की ओट से	38
11.	प्रश्न अभ्यासी के, उत्तर श्री बाबू जी के	45

सन्देश

मेरे प्रिय बहनों और भाइयों,

योग भारत का प्राचीनतम विषय है; किन्तु कुछ समय के लिए इसका **विकास** रुक गया था, क्योंकि (स्थूल) अस्थियों से (सूक्ष्म तत्व) फासफोरस **निकालने** की विधि विस्मृत हो गई थी। भारत अब स्वात्मस्थ भारत है; और **उसी** तत्व का बहिर्प्रसरण भी हो रहा है। इसीलिए भारतीय जन–मानस **की सच्ची** अन्तर्चेतना ने उसकी बहिर्गामी प्रगति प्रशस्त करने के लिए भी **करवट** ली है। ऐसा करने के लिए वे विवश हो गये हैं, क्योंकि आगे अच्छा **समय** आ रहा है। भाग्य की विडम्बना यह है कि हम (परिवर्तनशील **अनेकतामय**) वस्तुओं में अन्तर्हित (स्थायी एक) वस्तु को नहीं देखते। अतः **हम** चेतना का मापन अपनी वाह्यानुभूति द्वारा ही करते हैं। पहले के **भारतीय** सन्तों ने मानव–जाति के कल्याण के लिए बहुत कुछ किया, **किन्तु** उन्होंने बहुधा परासत्ता (हक़ीक़त) कुछ चुने हुए लोगों के लिए **सुरक्षित** रखी। अपने समर्थ सद्‌गुरु के आदेशानुसार मैं उसे प्रकाशित **करना**, और उसे जन सामान्य को प्रदान करना चाहता हूँ।

इसमें सन्देह नहीं कि संसार हममें है, और हम संसार में हैं; किन्तु हमें **बाह्य** दृश्य के पीछे विद्यमान सत्ता की खोज करना है। ध्यान और अन्य **सभी** कुछ केवल इसी के लिए है। हमें प्रतीत होता है कि वह (परमात्मा) **हमसे** अपने को छिपा रहा है, यद्यपि ऐसा है नहीं! हम कभी तारे देखते **हैं, किन्तु** कुछ प्रगति करने पर हमें सूर्य के तेज (प्रकाश) की अनुभूति होती **है; और** फिर वह समय भी आता है जब हम स्वयं सूर्य का ही दर्शन प्राप्त **करने** के योग्य बन जाते हैं। जब तक हम सूर्य के तेज के विषय में ही **चिन्तन** करते रहते हैं, वास्तविक सूर्य हमारी दृष्टि से ओझल रहता है। मै **सच्चे** हृदय से प्रार्थना करता हूँ कि सभी लोग लक्ष्य तक पहुँचे, जो हम **सबके** अस्तित्व का (मूल) कारण है।

यदि 'न–होना' (अनास्तित्व) होता, तो संसार का अस्तित्व ही न **होता**। यदि इसको आध्यात्मिक रूप में लिया जाये, तो 'होने' (अस्तित्व) **का अर्थ** 'स्वत्व' (आत्मा) है। यदि हम 'स्वत्व हीनता' (अनात्म क्षेत्र) में प्रवेश **करना** चाहें, तो हमें प्रत्ययन (विचार) के स्तर पर 'होने' को समाप्त करके

'न–होने' के वास्तविक स्वरूप तक पहुँचना होगा, जिसका अर्थ होगा– 'जीवन–रहित–जीवन' अर्थात् 'हम हैं और हम नहीं हैं' और साथ ही 'हम नहीं हैं और हम हैं'। उस 'एक' का प्रत्ययन (विचार) जो 'अपने आप में ही एक' हो चुका है, हमें ऐसी स्थिति में ला खड़ा करता है, कि 'जाना तो ये जाना कि न जाना कुछ भी।' और उस स्थिति में कामनाओं का सारा नगर ध्वस्त खण्डहर में परिवर्तित हो जाता है, और लिप्तवैयक्तिकता का प्याला फूट कर कुछ भी अपने में रख सकने के अयोग्य हो जाता है– 'उजड़ी हुई बस्ती है, फूटा हुआ पैमाना।'

आध्यात्मिकता का अन्त दिव्यता में होता है, और दिव्यता का पर्यवसान उसके मूल तत्व में होता है। मुक्ति के बाद मानव परमात्मा (ईश्वर) का सामीप्य अर्जित कर लेता है, और उस क्षेत्र में प्रविष्ट होता है, जहाँ मौन भी मौन है। जीवन्मुक्ति (शरीर धारी हालत में ही मुक्ति) भी आध्यात्मिकता का एक अध्याय है। पुद्गल (भौतिक तत्त्व) के तिरोधान के बाद आगे की विवृति (व्याख्या) भौतिक विज्ञान नहीं कर सकता। आध्यात्मिकता श्रेष्ठतम (परात्पर) तत्व की एक प्रकार की चेतना अथवा अनुभूति (भावना) है। यह शुद्ध एवं सम्पूर्ण दिव्यता अर्थात् सर्वांगतः श्रेष्ठतम (उच्चतम) साम्य के क्षेत्र में प्रवेश का सिंह द्वार है। परासत्ता (हक़ीक़त) की तुलना में हम सर्व शक्तिमान के सागर में एक बूँद मात्र हैं; और हमें किसी न किसी तरह बूँद से नदी बनने का प्रयत्न करना चाहिए।

मैंने अपने में दूसरों की सेवा की अभिलाषा विकसित कर ली है; अतः मैं अस्थिरता और तनाव पैदा करने वाले, विचारों और कर्मों के कोड़े की चोट खाये हुओं की सेवा के श्रेष्ठतर साधनों को निरन्तर खोजता रहता हूँ। यदि कहीं विष है, तो वहीं अमृत भी है। जब हम सूर्य की ओर मुँह करके खड़े होते हैं, तो हमें प्रकाश मिलता है, और जब हम सूर्य की ओर पीठ फेरकर खड़े होतें हैं, तो हमें अन्धकार मिलता है। तो इसका मतलब यही हुआ कि हम अपने ही कर्म द्वारा प्रकाश और अन्धकार दोनों ही उत्पन्न करते हैं। जब हम अपने को कर्त्ता समझते हैं, तो कठिनाई सामने आती है। सचमुच नुकीले कंटीले पौधों पर भी सुन्दर फूल खिलते हैं, जो आँख को सुख और हृदय को प्रसन्नता प्रदान करते हैं। इसी तरह यदि परमात्मा (ईश्वर) अपने ही पेड़ (सृष्टि) का फूल है,

तो हम ईश्वर से प्रसन्नता लाभ करते हैं, और उस सीमा तक पेड़ (सृष्टि) से नहीं। घर में मोरियाँ और नालियाँ होती हैं। उनका उपयोग होता है, न कि उन्हें तोड़ा जाता है। आप उनको अच्छा और आधुनिक बनाने का प्रयत्न करते हैं, न कि उनको पूर्णतः ध्वस्त करते हैं। दूसरी ओर समाज में अच्छे आदमी हैं, जिन्हें शायद आध्यात्मिकता की अधिक परवाह नहीं है। यदि उन्हें वह सुगन्ध मिल जाये, जो कि आध्यात्मिक उत्थान के साथ आती है, तो वे शीघ्र ही अपने व्यक्तित्व के रूपान्तरण की दिशा में प्रगति करेंगे। किन्तु हमें ऐसे अपुण्यवान व्यक्तियों की ओर भी ध्यान देना चाहिए, और उनकी दशा सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए, जिनमें सत् के लिए प्यास पैदा हो जाये, और समर्थ सद्गुरु के प्रति प्रणति की अभिवृत्ति विकसित हो जाये।

मेरे मतानुसार पूर्व और पश्चिम की सभ्यताओं में बहुत थोड़ा अंतर है। यहाँ हम अपने <u>अन्ततम</u> को ही अपनी आन्तरिक दृष्टि के विषय के रूप में प्रयोग करने का प्रयत्न करते हैं, जबकि वे <u>अपने को</u> अपनी आन्तरिक दृष्टि का विषय बनाते हैं। आध्यात्मिकता केवल भारतीयों के एकाधिकार की वस्तु नहीं, किन्तु वह सभी का जन्म–सिद्ध अधिकार है। मेरी प्रबल कामना है कि संसार के विभिन्न भागों के हमारे साथियों को आध्यात्मिक लाभ के लिए हमारा मुखापेक्षी न बने रहना पड़े। इसीलिए मैं कहता हूँ कि मैं शिष्य नहीं गुरु बनाता हूँ। मेरी मान्यता है कि संसार के प्रत्येक देश को आध्यात्मिकता में अपना भाग प्राप्त करना चाहिए। अब संसार भर में आध्यात्मिक जागृति है। साम्यवादी भी समुचित समय में यही पद्धति अपनायेंगे। लगभग हम सभी उस शांति के निकट आ गए हैं, जो आध्यात्मिकता का आधार है। जब यह चीज चल निकलेगी, और सारे संसार में पहुँच जायेगी, तो वह उन्हें; शान्ति के बाद जो कुछ है, उस तक ले जायेगी। अभी तो हमें, शान्ति से पहले जो कुछ है, उसी का पता है; किन्तु बहुत ही थोड़े लोगों को ज्ञात है कि शान्ति के बाद क्या है! मैं अनुभव कर रहा हूँ कि मेरा काम दिन प्रतिदिन आसान होता जा रहा है, क्योंकि अब यह दैवी विधान है। अब लगभग हर व्यक्ति शान्ति चाहता है, और शांति के अंतिम सिरे पर परासत्ता में प्रवेश है। मुझे आशा है कि एक वह दिन आयेगा जब आध्यात्मिकता हम सबके पीछे दौड़ेगी, यदि हमारे प्रशिक्षक, जन समुदाय के सर्वांगीण सुधार के

प्रत्यय से प्रेरित होने की इच्छा अपना लें। मैं स्वयं अत्यन्त दुर्बल और जराजीर्ण हूँ। फिर भी मैं वास्तविक शान्ति को मानवता के निकट लाने के लिए अधिकतम प्रयत्नशील हूँ। मेरे सामने जो काम है उसमें मैं योग्य पुरूषों और योग्य महिलाओं की सहायता चाहता हूँ। इसमें सन्देह नहीं कि संसार स्वर्ग बनेगा, किन्तु इसके लिए हमें अत्यधिक परिश्रम करना होगा। हमें इतना ही करना है कि दिव्यता सदैव हमारी मजबूत पकड़ में रहे। मैंने कभी हताशा अनुभव नहीं की और अकेले हाथों अपने काम में लगा रहा, और परिणाम हम सबके समक्ष है। अपनी पीठ पर समर्थ सद्‌गुरु का हाथ लिए हुए मुझे अपने आप पर हमेशा पूरा विश्वास रहा है; और इससे मुझे सदैव सफलता मिली है। आप सब से भी मैं बस इसी की कामना करता हूँ।

अंततः प्रेम हर काम को आसान बनाता है, और चरम लक्ष्य तक पहुँचाने वाले मार्ग को ठोक पीट कर समरस बनाने के निमित्त समर्थ सद्‌गुरु की कृपा–वृष्टि का पथ प्रशस्त करता है। सुकरात के अनुसार 'प्रेम दिव्य सौंदर्य के लिए मानव–आत्मा की भूख है', और मेरे अनुसार 'प्रेम परासत्ता के प्रति अन्तर्जागरण है।' उसे प्रेम करो, जो सभी को प्रेम करता है, और इस तरह उसके माध्यम से सभी के प्रति स्वतः प्रेम हो जाता है।

एवमस्तु !

दिनांक : 30.4.1980

अध्यक्ष

श्री रामचन्द्र मिशन

शाहजहाँपुर (उ.प्र.)

दो शब्द

आज पुस्तक के दो शब्द लिखने से पहले मुझे अपने श्री बाबू जी महाराज के पत्र संख्या 843 (अनन्त–यात्रा भाग–IV) के इस वाक्य को लिखते हुये अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि "तुम्हारा पत्र मिल गया – मुझे खुशी है कि लाला जी साहब ने तुम्हें आध्यात्मिक Research के लिए छाँटा है।" और यह भी लिखा कि जहाँ तक हो सकता है तुम हर हालत को बहुत अच्छी तरह से लिखती हो।" और हो भी क्यों न; जबकि इस लेखन में उनकी कृपा एवं प्यार के साथ उनकी Divine-Will की पूर्ति की किसी हद तक संतुष्टि का इशारा भी मिल रहा है।

अरे! आज सादगी की ओट से मुझे किसने पुकारा है? तो सुनिये "दो शब्द" मुझे बुलाकर कुछ कह रहे हैं। शब्द तो एक ही था 'प्यार', किन्तु अर्थ दो थे, अर्थात् यह अपने अर्थ का स्वयं–द्योतक था। यह कौन सा शब्द था जो एक होते हुये दो का अर्थ प्रगट कर रहा था, 'प्यार' अर्थात् पा + यार अर्थात् पायार को, यानी अपने प्रिय को पाले तभी तेरा प्यार सार्थक हो जायेगा। अब जब अर्थ से आप शब्द बनायेंगे तो दो शब्द ही पायेंगे। भक्त भगवान, साधक--साध्य। हर शब्द संकेत देता है कि यदि तू भक्त है तो भगवान को पा ले, साधक है तो साध्य की प्रत्यक्षता को पा ले, अभ्यासी है तो हृदय में विराजमान ईश्वर का आभास पा ले। क्योंकि प्यार तो प्रियतम को पाने के लिये ही होता है। जैसे प्रियतम प्यार की ओट में ही तो है – अलग नहीं है। भगवान भक्ति की ही ओट में तो है, फिर पाने में देरी क्यों? सहज–मार्ग–साधना का संकेत है कि ईश्वर तेरे हृदय में है फिर आभास पाने में विलम्ब क्यों। हाँ तो सुनिये सादगी की ओट ने हमें बता दिया है कि जैसे मेरी ओट में दिव्य विभूति समर्थ श्री लालाजी साहब का लाल था – प्यार के शब्द ने अर्थ स्वरूप उन्हें समस्त के हित धरा पर पुकार लिया है। किन्तु मेरे गीत की हर लाइन के शब्दों ने तो, सपन की ओढ़नी में से अपने जीवन–सर्वस्व श्री बाबू जी के मिलन हित मुझे ओढ़नी में ही समेट लिया था अर्थात् लय कर लिया था। आगे और क्या और कैसे बताये लेखिनी कि 'प्यार' से तो तू प्रियतम को पा गई थी, किन्तु यह क्या फिर प्रेम की लचकन, जब सलवट बनकर मध्य में आ खड़ी हुई तो भला

यह उनकी बिटिया उनसे यह कैसे बोल पाती कि "मालिक! यह इतनी सी ही दूरी भला आपने क्यों रख ली है? क्या सदा तरसाने के लिये नहीं, यह तो नहीं हो सकता क्योंकि उन्हें मालूम था कि फिर इस तरसन को झेल पाने की क्षमता किसमें रह पायेगी। अतः पलक झपकते ही मानों शब्द का अर्थ बदल चुका था। मानों सादगी की इस ओट से मिलते दर्शन ने बराबर मुझे जीने का हौंसला एवं ज़िंदगी का एहसास दिया। और एक दिन? सादगी की ओट ने समस्त के आत्मिक–उद्धार के हित अपनी ओट से वह दिव्य दर्शन, समस्त के हित सुलभ कर दिया। और धरा विभोर हो उठी एवं आकाश न्यौछावर होकर उनका गुणगान करने लगा कि 'ओ! बाबूजी जो तेरे चरणों में आ गये, आध्यात्म–पथ पै जलती वो मशाल पा गये"। ओ बाबूजी! क्रमशः सादगी की ओट ने भी दिव्य–विभूति के हित प्यार सहित समर्पण कर दिया, और प्यार शब्द का प्यार, समस्त हृदयों को अपने रस से सराबोर करने लगा यह कह कर कि "जब तू था तब मैं नहीं, अब तू है मैं नाहिं"। क्या कहियेगा अब? प्रकृति थिरक उठी है और वातावरण झूम उठा है, सादगी की ओट से दैविक–मुस्कान पाकर।

एक परिचय-दिव्य-विभूति का

आखिर! आज मैं किसका परिचय पाना चाहती हूँ? किसका परिचय लिख पाने के लिये मेरी यह लेखिनी अपने श्री बाबूजी के समक्ष नत–मस्तक हुई उनके दिव्य–चरणों की ओर निहार रही है। दिव्य–विभूति श्री बाबूजी महाराज के प्रागट्य की उपस्थिति के समक्ष पलकें बिछाये विचार–मग्न हो गई है मेरी यह लेखिनी कि किसका परिचय आज मानों स्वतः ही प्रगट हो जाना चाहता है इसके सामने। यह उनका परिचय है जिनका यह कथन है कि "आध्यात्मिकता का ख़जाना जो मैं समस्त के हित लाया हूँ वह सब यहाँ बिखेर कर जाऊँगा, वातावरण धरोहर की तरह इसे सहेज लेगा, समय आने पर क्रमशः सब कुछ स्वतः ही प्रगट होता रहेगा"। केवल मात्र यही कारण मैं पा रही हूँ कि उस दिव्य–परिचय को मानों आज वातावरण स्वयं में पचा न पाने के कारण समस्त के हित में मेरी लेखिनी द्वारा प्रगट हो जाना चाहता है। जानते हैं क्यों? क्योंकि वातावरण हो या समय हो, वह दिव्य–संदेश को बहुत काल तक अपने अंतर में समेट पाने में असमर्थ होता है क्योंकि समय सत्य है और सत्य तो प्रकट होता ही है। अब देखना यह है कि समय एवं वातावरण अपनी इस असमर्थता के फलस्वरूप उस दैविक–सत्य को कैसे प्रगट कर पाते हैं।

कितना कठिन होता है उसका परिचय, जो धरा पर प्रगट होकर इसे देता ही रहता है और सदैव देता ही रहेगा। किन्तु, लिया कुछ भी नहीं, यहाँ तक कि धरा ने प्रार्थी होकर दिव्य–चरण–स्पर्श का मात्र प्रसाद तो पाया है, किन्तु यहाँ रहते हुये भी धरा पर रहने के उनके भाव के स्पर्श से भी वंचित रही है। पृथ्वी का वातावरण तो उनकी दैविक–प्राणाहुति शक्ति के प्रवाह से आकाश तक को पखार कर पावन बनाता रहा है, एवं उनकी दैविक विशुद्ध एवं सहज मुस्कान वातावरण को सहज–आनन्द के प्रसाद से भरती जा रही है। पृथ्वी पर विचरते हुये उन दिव्य विभूति की खुद से ही शून्य हुई दृष्टि, धरा से लेकर आकाश तक के वातावरण को अहं (ego) के भार से हल्का रखती हुई शून्य–दशा की ओर मानव–मात्र को ले जाने की क्षमता से सजाती रहेगी। कदाचित् उस दिव्य–विभूति के परिचय का यह बिन्दु–मात्र परिचय ही मेरी लेखिनी के भाग्य में आ सका है किन्तु कहावत है कि 'बड़े बाप का बेटा बड़ा'

इसलिये अब आगे यह लेखिनी जो कुछ भी अपने लेखन में बोलेगी उनकी दैविक–ज़ात के चरण–स्पर्श का शून्य ही कुछ व्यक्त कर पाने में सहायक होगा। आज शून्यावस्था को भी बोलना होगा, जो आज तक स्वयं अपनी पहचान से भी अपरिचित रही है। यहाँ तक कि दिव्य–विभूति श्री बाबूजी महाराज का हर एक के लिये उनके मिशन में स्वागत रहा है। 'वे' तो मानव मात्र में ईश्वर–प्राप्ति की चाहत को जगाने के हित अपने दैविक–संकल्प की पूर्त्ति के हित फ़ना है। कदाचित् यह तो उनके दैविक–संकल्प का लघु परिचय है।

शब्द मौन हैं कदाचित् इसीलिये कि आख़िर आज उन परम–जीवन सर्वस्व के दैविक–संकल्प को ही मुखरित करना पड़ा है उसका (भूमा का) पता जो सदैव बेपता ही रहा है। सत्य तो यही है कि उनके दैविक–आवाहन अथवा अवतरण ने कुल आध्यात्मिक दशाओं को आत्मसात् कर पाने हेतु एवं मानव–मात्र के हित दिव्य–साक्षात्कार पाने हेतु एक सरल एवं सहज–मार्ग प्रशस्त किया है जिसमें उनके द्वारा मानव हृदय में प्रवाहित ईश्वरीय–धारा (Transmission) के प्रवाह ने साधना को सिद्धि प्रदान करने के लिए मानों हृदयों को दिव्य–साक्षात्कार के सौंदर्य से सजाया है। अंतिम–सत्य (भूमा) की डयोढ़ी में प्रवेश देने वाली उनके प्यार से भरी दिव्य इच्छा–शक्ति ने सहज–मार्ग–साधना को आरंभ से ही ईश्वरीय–प्रकाश से प्रकाशित रखते हुये महत् दर्शन के हेतु सँवारा है। साधना में अभ्यासी की प्रथम सिटिंग द्वारा ईश्वरीय–धारा के सतत् प्रवाह से हृदय को विशुद्ध बनाते हुये उनके प्यार एवं दिव्य प्रकाश (Divine light) का आंतरिक सेंक, अहं के हर बंधन को पिघला कर बाहर करता हुआ क्रमशः अभ्यासी–हृदय को अहं के बंधन से मुक्त करने लगता है। एक दिन! 'अहं' अर्थात 'नहीं हैं हम' के भ्रम का आवरण दूर करके क्रमशः श्रेष्ठ आध्यात्मिक दशाओं से हमें सजाते हुये, अपने कथन की प्रत्यक्षता अर्थात् Zero की गति में प्रवेश दे देते हैं। यह हमारे 'श्री बाबूजी' के 'श्री रामचन्द्र मिशन' के अन्तर्गत सहज–मार्ग–साधना का मात्र आंशिक परिचय ही है।

काश दिव्य विभूति मेरे बाबूजी, मेरी इस लेखिनी में ऐसी सामर्थ्य एवं शक्ति भर दें जिससे यह लेखन, लेखन न रहकर दिव्य–दृष्टि का प्रतीक

बन जाये। इस लेखन द्वारा साधना में आदि से लेकर अनन्त तक की दशाओं की यात्रा की हर बारीकी के विषय में जो उन्होंने अपनी Research द्वारा स्पष्ट रूप से मुझमें उतारा है, अनन्त अर्थात् भूमा तक के रहस्य को समस्त के हित उजागर करके धन्य कर दिया है। मेरा तो मानव–जीवन उसी दिन धन्य हो चुका था जिस दिन उनका दिव्यता से परिपूर्ण मानव रूप में दर्शन मैंने अपने आँगन में पाया था। मेरे हृदय की पुकार आज भी उनके समक्ष प्रार्थी बनकर यह आरजू लिये खड़ी है कि काश मेरे बाबूजी अपना वह वाक्य समस्त के लिये दुहरायें कि ''बिटिया, मैं भी तो तुम्हें खोज रहा था''। मेरी प्रार्थना के ये शब्द आपके समक्ष नत–मस्तक हुये क्या गुनगुना रहे हैं? सुनिये, श्री बाबूजी आध्यात्मिक क्षेत्र में सहज–मार्ग–साधना के प्रथम चरण कि ''हृदय ईश्वरीय–प्रकाश से प्रकाशित है'' से लेकर साक्षात्कार का परमानन्द, फिर 'भूमा' के वैभव–देश में पैराव की अविभूत–अवस्था प्रदान कर देते हैं। फिर आगे मानों अनन्त–अवस्था में बाबूजी महाराज के संकल्प की नाव में पैरते हुये भूमा के द्वार के स्पर्श में अपनी Identity के भाव के भुलक्कड़पन से भी आज़ाद हुआ मानव हृदय अपने रचयिता के हृदय में ही विलीन हो जाता है। ओ बाबूजी! वह दिन तो आयेगा ही क्योंकि धरा पर आपका दिव्य–अवतरण मानव–मात्र के हित ही हुआ है। आपको अपने में समेट कर आंतरिक–पुकार सार्थक हो गई है। आपके दिव्यागमन के प्रभाव से अब मानव–मन, 'मनन' अर्थात् सतत् स्मरण के आगार बन जायेंगे। सहज–मार्ग के दस–नियमों की गरिमा में डूबकर दिव्य–साक्षात्कार अब सबके लिये संभव हो जायेगा। आपका यह दिव्य–कथन कि ''मानव–मन आदि–शक्ति का अंश रूप है'', अब सहज ही सिद्धि पा लेगा। श्री बाबूजी महाराज का यह दैविक–कथन है कि ''मन सबसे बड़ा मीत है''। जब यह मन सहज–मार्ग–साधना द्वारा दैविक स्तर प्राप्त कर लेगा तब प्रत्येक के आध्यात्मिक–उत्थान हेतु सहायक बनकर मानव–रहनी में सत्–युग अर्थात् ईश्वरीय रहनी को उतार लायेगा। समर्थ लालाजी साहब की प्रार्थना के फलस्वरूप श्री बाबूजी महाराज भूमा की अनन्त शक्ति के प्रतीक स्वरूप ही धरा पर अवतरित हुये थे। यही कारण है कि आदि–शक्ति की गरिमा में डूबा हुआ उनका वह दैविक–संकल्प ही, मानों उनके आदि–मन के रूप में प्राणी–मात्र के मन से दिव्य योग पा गया है। अरे! यह क्या? मेरी लेखिनी ने अब मेरा दामन छोड़ दिया है तो

भला अब बतायें कि मैं आगे कैसे लिख पाऊँगी? लेकिन यह क्या? मेरी लेखिनी तो मानों Divine अपने बाबूजी का दामन थाम कर मुझसे ही किनारा कर गई है।

अब आप ही बतायें कि भूमा के अंश रूप महत् अवतरण का महत् परिचय भला कौन लिख पाता, यदि वह दिव्य–विभूति स्वयं ही समक्ष होकर अपना परिचय उजागर न करती। अवतारों का परिचय तो ऋषियों–मुनियों द्वारा हमें मिलता रहा है; श्री लाला जी साहब का दिव्य परिचय उस हस्ती के रूप में है जो अपने दैविक साहस से आदि–शक्ति अर्थात् भूमा (Ultimate) की शक्ति से सम्पन्न उनके अंश को ही धरा पर उतार लाए थे। तो सुनें; समर्थ सद्‌गुरू श्री लाला जी साहब (फतेहगढ़, यू.पी.) जिनका पावन नाम श्री रामचन्द्र जी महाराज था एवं जिनका जन्म कदाचित् इस दैविक कार्य को पूर्ण करने हेतु ही हुआ था। वे महत् सद्‌गुरु केवल 'संत–मत' के सौंदर्य ही नहीं थे वरन् वास्तव में 'वे' जन्म से ही सन्त थे; ऐसा मैंने उनकी जीवनी पढ़ने के बाद ही पाया है। दृढ़–संकल्प होते हुये अति संयत (Balanced), विनम्र किन्तु ओजस्वी वाणी के 'मालिक' थे। नेचर द्वारा उनके गुरू को सौंपे गये दैविक–कार्य की पूर्त्ति का बीड़ा उन्होंने (श्री लाला जी साहब) ही उठाया था। स्वयं की सात माह की अथक तपस्या में लयलीन उनकी प्रार्थना ने जब 'भूमा' के चरण–स्पर्श किये तभी फल–स्वरूप भूमा के अंश श्री बाबू जी ने आदि–शक्ति की गरिमा से भरपूर दैविक–सौंदर्य से धरा को प्रकाशित किया था। संभवतः तभी श्री लाला जी साहब को डिवाइन ने वरदान स्वरूप आदि–गुरु, समर्थ, सद्‌गुरु की उपाधि से विभूषित किया था। और क्या लिखूँ बस इतना ही दैविक–संकल्प का लघु–परिचय है जो युग को आध्यात्मिक सौंदर्य से सजा देने के लिए ईश्वरीय–शक्ति की धारा प्रवाह से सम्पन्न है।

श्री रामचन्द्र मिशन

श्री रामचन्द्र मिशन की कुल गरिमा मानों दैविक–परिचय में ही डूबी हुई है। मिशन के अंतर्गत सहज–मार्ग–साधना द्वारा पाई हुई दशाओं के बारे में मेरे पत्रों के उत्तर में सूक्ष्मातिसूक्ष्म दशा के विषय को स्पष्ट करके, मेरे बाबूजी ने मानों आध्यात्मिक–साहित्य को अनन्त यात्रा के पाँच Volumes के रूप में समस्त के हित अमूल्य–निधि प्रदान की है। श्री बाबूजी के दिव्य चरणरज का स्पर्श पाकर यह अनुभव सरिता, मानव हृदय को विशुद्ध बनाती हुई मस्तिष्क में श्रेष्ठ विचारों को जन्म देती है और भावनाओं में अपनत्व की मिठास भर देती है। सहज–मार्ग–साधना की हर देहलीज़ को चाहे वह ध्यान हो, सफ़ाई हो अथवा रात्रि की प्रार्थना हो, लाँघते ही अनुभव में मैंने उस अनन्त के दैविक परिचय का दर्शन ही पाया है। दैविक–सामीप्यता के अंतर में सेंक पाते रहने ने मानो मुझे यह बताया है कि "तुम उसकी सामीप्यता में पगती जा रही हो।" ध्यान की डयोढ़ी के भीतर प्रवेश पाते ही, हमारे अंतर में झांकता हुआ ईश्वरीय–प्रकाश में डूबा हुआ ईश्वरीय–झलक का दर्शन, मानो सहज मार्ग के ध्यान की यथार्थता का सजीव–परिचय प्रदान करता है। सायंकाल की सफ़ाई की देहलीज़ पार करते ही, हृदय के विशुद्ध–दर्पण में हमें दैविक–दर्शन की मधुरता का परिचय मिलता है। रात्रि की प्रार्थना की देहलीज़ लांघते ही मानो प्रार्थना अपनी पूर्णता का परिचय देकर हमें समर्पण की परम–स्थिति का परिचय प्रदान कर देती है। जानते हैं फिर क्या होता है? तो सुनिये! ध्यान हममें दर्शन (साक्षात्कार) की झलक भर देता है– सफाई ईश्वरीय–दर्शन के आहट की खुश–खबरी देती है– प्रार्थना हमारे अंतर को मिलन के समाचार की व्यग्रता में लय करके हृदय के विशुद्ध दर्पण में दैविक–साक्षात्कार की पूर्ण तैयारी कर देती है। इस दैविक दशा की प्राप्ति के बाद ही श्री बाबूजी महाराज ने मुझे लिखा था कि अब "सहज मार्ग" का दर्शन तो पूर्ण हो जाता है और अब सत्य–पद से जुड़ी हुई सहज–धारा में प्रवेश पाकर अभ्यासी की यात्रा स्वतः ही (श्री बाबूजी महाराज के संकल्पानुसार) भूमा के दिव्य वैभव–केन्द्र सेन्टर रीजन की ओर बढ़ चलती है।

आज इस तथ्य (Truth) के विषय का भी पूर्ण परिचय मेरे समक्ष में व्याप्त है कि "कौन थे वे"? मेरी इस पुस्तक में श्री बाबूजी महाराज के गुणानुवाद का परिचय मेरे बाह्य–चक्षु द्वारा ही पूर्णता को पा सका था। अर्थात् यह भी कहा जा सकता है कि यह परिचय अधिकतर उनके सगुण–स्वरूप के दर्शन से ही सम्बन्धित था। "वह दिव्य–छवि" नामक मेरी पुस्तक–मात्र अंतर्चक्षु द्वारा ही उनके दैविक (निर्गुण) परिचय को भी समस्त के प्रति समक्ष में रख सकी है। पश्चात् सैन्टर–रीज़न जो मुख्य केन्द्र अल्टीमेट (Ultimate या भूमा) के वैभव का ही केन्द्र है में swimming या पैराव के परिचय को लिख पाने के लिए मेरी लेखिनी ने उनके ही चरणों में नत् रहकर प्राणी मात्र के हित उनके दैविक–संकल्प से दिव्य–दृष्टि का सहारा पाया था। आगे अब लेखिनी बेचारी मौन हो गई–दृष्टि विहीन–दृष्टि ने जब भूमा के पसारे को सहेज पाने के लिये सात दिव्य–रिंग्स में प्रवेश पाया तो श्री बाबूजी ने दैविक चक्षु भी प्रदान किये, तभी तो मेरी लेखिनी उस तम–अवस्था के समस्त परिचय को लिखने के बाद मानो खुद को चक्षु विहीन की ही संज्ञा देकर, मौन साध गई। बेचारी बोलती भी कैसे, क्योंकि अब वह भूमा के सजीव–अंश श्री बाबूजी का ही परिचय पाकर मानो सादगी की ओट में ही विलीन हो गई है।

"सहज-मार्ग-साधना पद्धति"

सहज–मार्ग में साधना द्वारा प्रथम दिन से, पहली ही सिटिंग से, मैंने जो अनुभव पाया वह है इस मार्ग का सहज–दर्शन अर्थात् फ़िलासफी एवं साधना का प्राण। अभ्यास में हमें यह ध्यान रखने को कहा जाता है कि "ईश्वर तुम्हारे हृदय में मौजूद है और उसके प्रकाश से तुम्हारा सम्पूर्ण हृदय प्रकाशित है और तुम उसमें डूबे हुये हो"। इस अभ्यास की सहज बारीकी है 'साध्य' जिसके साक्षात्कार हित हमने सहज–साधना या उसका ध्यान रखना आरंभ किया है। साथ ही यह अभ्यास कि "हृदय ईश्वरीय–प्रकाश में डूबा हुआ है" बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। ईश्वरीय प्रकाश का विचार जैसे–जैसे गहन होता जाता है वैसे ही वैसे ईश्वरीय–तपिश हृदय एवं कुल system में से भौतिकता को पिघलाकर बाहर निकालती जाती है और हमारे हृदय एवं system दिव्य प्रकाश (Divine light) से प्रकाशित रहने लगते हैं जिससे हमें ईश्वरीय–सामीप्यता का सेंक व आनन्द का अनुभव बराबर मिलने लगता है। यही कारण है कि साधना प्रारम्भ करने के थोड़े ही काल में 'साध्य या ईश्वर हमारे अंतर में मौजूद है, यह ध्यान रखने से अंतर में हमें दिव्य–आकर्षण (Divine attraction) का आभास मिलता है। ईश्वरीय–प्रकाश के अंतर में फैलने से वह आनन्द एवं विशुद्धता हमारे ध्यान के attention को निरंतर अंतर्मुखी बनाती जाती है। वृत्ति का अंतर्मुख होना साधना में सिद्धि का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

अब क्रमशः ध्यान का सतत् केन्द्र अंतर में विद्यमान ईश्वर ही हो जाता है तभी से फिर वाह्य–आकर्षण फीके पड़ते जाते हैं। वाह्य–आकर्षण कम होने से सांसारिक–इच्छायें सिमटती चली जाती हैं और अंतर ध्यान में सतत् डूबे रहने के अभ्यास में सहज ही लग जाता है। ध्यान में आनन्द, एवं उस आनन्द में भी ईश्वरीय–ध्यान रखने की आंतरिक–चेतना हमें अब 'उनकी' अपनायत का यह साँचा परिचय प्रदान कर देती है कि "वह हमारा है, और इतना निकट, कि हमारे अंतर में ही मौजूद है"। कोई अपना इतने निकट हो और आनन्द का अनुभव हमें बराबर उसका पता देता रहे तो फिर आंतरिक–लगन उसकी याद से लिपटना शुरू कर देती है। अंततः Divine अपनायत की अनुभूति में पगी याद से हृदय में ईश्वरीय–मिलन की चाह जन्म ले लेती है। अब साधना शब्द का अर्थ

अंतर्दशा के रूप में हमारे अंतर में प्रगट हो जाता है। शब्द 'साध' का अर्थ है इच्छा एवं 'ना' का अर्थ है 'नहीं' अर्थात् अंतर्दशा पुकारने लगती है कि आपका साक्षात्कार पाने के अतिरिक्त मुझे कोई इच्छा नहीं है। फलस्वरूप हृदय की चाहना अंतर में कहीं कुरेदना को जन्म देती है जिसका योग मात्र साक्षात्कार प्राप्ति से ही होता है। प्रकृति का नियम है कि जन्म हो तो बढ़त अवश्यम्भावी है। बस ऐसी अंतर्दशा की प्राप्ति से हमारी सहज–मार्ग साधना हमारे लिये सहज अर्थात् natural हो जाती है अर्थात् अब हमें ध्यान रखना नहीं पड़ता है वरन् अब ईश्वर का ध्यान स्वतः रहने ही लगता है। अब इसका दुगुना लाभ देखें। जब ध्यान स्वतः रहने लगता है तो Divine attraction उसे स्वयं में समेटे रहता है और तब से कुल अंतर्मन ईश्वरीय प्रकाश से जगमगा उठता है और ध्यान मानों डिवाइन की डयोढ़ी पर ही डटा रहने लगता है। जब ध्यान वहाँ डटा ही रह जाता है तो फिर डिवाइन attraction हमारे अंतर को दैविक–सौंदर्य से सजाने लगता है। बस तब से ही ध्यान रखने एवं सफ़ाई की प्रक्रिया से क्रमशः हम मुक्त होते जाते हैं। तभी मेरे श्री बाबूजी महाराज ने मुझे पत्र में लिखा था कि "ध्यान तो अब तुमसे होने से रहा क्योंकि दशा जब अभ्यास से हल्की हो जाती है तो अभ्यास सहन नहीं होता है। जब कुल अंतर ईश्वरीय–प्रकाश से प्रकाशित रहने लगा तो भला सफ़ाई की ज़रूरत ही कहाँ रही" अब आप ही बतायें कि सहज–मार्ग–साधना पद्धति भला अपना क्या परिचय दे सकती है।

आगे सुनिये जब दैविक–आकर्षण हमारे अंतर को दैविक–सौंदर्य से सजाने लगता है तो मानों वह हमें ईश्वरीय–मिलन के हेतु तैयार करने लगता है। इस तैयारी का नाम है भक्ति अर्थात् भक्ति का जन्म हो जाता है। ह्रदय में भक्ति उत्पन्न हो जाने पर मानो ध्यान अपना स्थान भक्ति को देकर स्वयं भक्ति में लय हो जाता है। भक्ति उत्पन्न हो जाने पर हमारा अंतर्मन स्वतः ही आत्म–निवेदित दशा में डूबा हुआ मानो ईश्वर के समक्ष तन्मय हुआ रहने लगता है और साक्षात्कार पाने के लिये सतत् प्रार्थी बन जाता है। इस प्रकार सहज–मार्ग–साधना के तीनों सोपानों–ध्यान, सफ़ाई एवं रात्रि प्रार्थना की अंतिम कड़ी भी मन भूलने लगता है अर्थात् अब प्रार्थना करने का ध्यान ही नहीं रहता है। क्योंकि प्रार्थना के सार या आत्म–निवेदित दशा में प्रवेश पा जाने से हमारा अंतर सतत् प्रार्थी बन कर

स्वयं की भी विस्मृत–अवस्था से नहाया रहने लगता है। वास्तविक तथ्य मैंने इसका यही पाया है कि सहज मार्ग साधना का मेरूदंड है हमारे श्री बाबूजी महाराज का दैविक–संकल्प, जो मानव–मात्र के हृदयों को ईश्वर प्राप्ति के योग्य अपनी दैविक प्राणाहुति शक्ति के द्वारा ही बनाता है। उनके दैविक–संकल्प से प्रवाहित ईश्वरीय–धारा का सतत् प्रवाह ही अभ्यासी को साक्षात्कार के योग्य बनाता है जो सहज–मार्ग system में प्रवेश पाने के लिये प्रथम sitting से ही हमें प्राप्त होती है। इतना ही नहीं उनकी दैविक–शक्ति के गौरव एवं गरिमा का सजीव–प्रतीक है 'श्री रामचन्द्र मिशन' में उनके द्वारा बनाये हुये प्रशिक्षक। सम्पूर्ण ईश्वरीय–शक्ति के प्रवाह द्वारा अभ्यासी हृदय को विशुद्ध बनाकर, हृदयों में भक्ति का प्रकाश देकर प्रशिक्षक के हृदय को Divine power से योग देकर अभ्यासियों को आध्यात्मिक–शिक्षा प्रदान करने की आज्ञा देने की बात कैसी गौरवमई है। हृदय में भक्ति का प्रकाश भरने के बाद, ईश्वर–प्राप्ति की चाह को निखारते हुये अभ्यासियों के system को ईश्वरीय–प्रकाश से प्रकाशित कर दैविक–शक्ति से योग दे देना, इस विषय में आध्यात्मिक–साहित्य एवं भक्ति–साहित्य नितान्त मौन रहे हैं। आज श्री बाबूजी महाराज की दिव्य–विभूति ने इस मौन को सदैव के लिये समाप्त कर दिया है। समस्त को पावन transmission द्वारा आध्यात्मिक प्रशिक्षण प्रदान करने हेतु प्रशिक्षक को दैविक–शक्ति द्वारा तैयार करके उनकी सहज–मार्ग–साधना पद्धति ने आध्यात्मिक साहित्य का शीश गौरव से ऊँचा कर दिया है। युग ने उनको Divine Personality के रूप में स्वीकार करके अपने मस्तक पर उनकी पावन–चरण–रज का टीका लगाकर स्वयं को सौभाग्यशाली बनाया है। आज के गिरे युग में हमारे 'दादा गुरू' समर्थ श्री लालाजी साहब ने आदि–शक्ति (भूमा) के मुख्य केन्द्र से श्री बाबूजी महाराज सी दिव्य–विभूति का धरा पर अवतरण दिया और फिर खुशी में उनमें ही लिपट कर लय हो गये। उनके प्रेम का यह दृष्टांत अपने में अनूठा, अनुपमेय एवं अद्वितीय है और सदैव रहेगा।

ऋषि–मुनियों की प्रार्थना द्वारा अवतारों का अवतरण धरा पर हुआ और जिस कार्य के लिये अवतार हुआ वह पूर्ण करके वे अवतार चले गये। उनका परिचय उनके कार्यों के गुणानुवाद द्वारा हमें पावन 'श्री रामचरित मानस', 'सूरसागर' एवं अन्य ग्रन्थों द्वारा मिलता रहा है जिन्हें आज भी हम

पढ़ते हैं। हाँ जो उनके दिव्य–अवतरण को जानकर उनसे जुड़ गये उनको भगवान मिल गये। किन्तु इस प्रकार आध्यात्मिक शिक्षा के साथ प्राणाहुति–शक्ति का प्रवाह लेकर मानव मात्र के आत्मिक उत्थान का संकल्प लेकर श्री बाबूजी की तरह कोई आया ही नहीं फिर भला आध्यात्मिक साहित्य कैसे मौन न होता। ऐसी Divine-Personality का परिचय कभी किसी को मिला ही नहीं तो भला लेखन दिव्य आध्यात्मिक गतियों की अनुभूति में डूबकर, भला उनका परिचय कैसे दे पाता। आज आदि से लेकर अंतिम–सत्य (भूमा) तक की श्रद्धा, भक्ति, प्रेम एवं अनन्त–यात्रा तक की दिव्यानुभूतियों से भरे मेरे पत्र एवं बाबूजी के उत्तर के पाँच भाग समस्त के हित के लिये मेरे 'श्री बाबूजी' की आध्यात्मिक–क्षेत्र में अनुपम देन है। भूमा तक की कुल अनन्त–यात्रा की दशाओं की अनुभूतियों से भरी पाँचों कृतियों के लेखन से मेरी लेखनी धन्य हो गई है। ऐसा तभी सम्भव हो पाया है जबकि अपने श्री बाबूजी महाराज के चरणों की कोर को मस्तक पर धारण करके मेरी लेखिनी ने उनके हस्तकमल का स्पर्श पाया है– फलस्वरूप सहज–मार्ग–साधना पद्धति द्वारा इसमें आध्यात्मिक–प्रशिक्षण की गरिमा को भी धारण करके मेरा यह लेखन समस्त के आत्मिक–कल्याण हेतु ईश्वरीय–द्वार के प्रहरी के सदृश है। उनके प्यार के द्वारा खोले भेदों को समस्त के हित स्पष्ट कर पाने का मानो इसने बीड़ा ही उठा लिया है। लिखाने वाले तो मेरे बाबूजी ही हैं। यह सत्य भी इस तरह स्पष्ट है कि समक्ष में आये दैविक–लेखन को उतारने में कभी दिमाग़ या हाथ थक भी जाते हैं तो भी उनकी ही इच्छा स्वरूप उनकी यह बिटिया अपने ऊपर उतारी हुई उनकी Divine Research को सहज ही समक्ष में फैला देखकर विभोर हुई, सुधि–बुधि खोये, लेखिनी उठाये बैठी रही है और बैठी रहेगी।

सहज–मार्ग–साधना पद्धति की गरिमा के विषय में कुछ कह पाना असंभव है क्योंकि साधना को अपनाने पर ही हमारे अंतर की बदलती हुई दशा, विचारों की दिशा एवं ध्यान के ठहराव का अनुभव ही बोल सकता है। जानते हैं क्यों? क्योंकि इसमें साधना द्वारा पाया अनुभव ही बोलता है क्योंकि मनस् वृत्तियों के आत्मिक विकास में ऊर्ध्वमुख हुई वृत्तियाँ स्वयं में सदैव यही बोलती है कि "ऊँची जात पपीहरा पियत न नीचो नीर", कै जाँचत घनश्याम सौं, कै रहि धुनत शरीर"। इसमें ध्यान करने व रखने के

अनुभव ने बताया कि अब आंतरिक–दृष्टि प्रहरी बनकर बैठी है जो कि वाह्य के रंग को अंतर में उतरने ही नहीं देती है क्योंकि ईश्वरीय–रंग में रंगा हमारा ध्यान अंतर को Divine रंग में रंगने लगता है। इतना ही नहीं अब तक संसार में रमे ध्यान में जो भी सांसारिक–रंग भर गया था क्रमशः अंतर में बसे ईश्वर का ध्यान रखने के अभ्यास द्वारा वह बहुत शीघ्र उतरता जाता है। अंतर ईश्वरीय–रंग (याद) में रमा रहने लगता है– कदाचित् तभी कोई मीरा गुनगुना उठी होगी कि "मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोई"। इसी अनुभव को लेकर सूर की भावना गुनगुना उठी होगी कि "ऊधो मन न भये दस–बीस, एक हुतो सो गयो श्याम संग, को अवराधै ईश"। भाइयों सच तो यह है कि अंतर की ईश मिलन की पीड़ा – अंतर में प्रिय से मिलन के उद्गार के अनुभव को हमारे लेखन में उतारती है। तभी किसी संत का लेखन प्रत्यक्ष होकर, अनुभव के रूप में, बोल उठा होगा कि "आये राम लौट गये घर से उठि पइयाँ नहिं लागी" आखिर क्यों? तो सुनिये क्योंकि "अँखियाँ नींद भरी नहिं जागी"। भला बताइये कि हमारे अंतर में विद्यमान प्रिय को जब हमारा अनुभव निहार कर तन्मय हुआ मगन हो जाता है तो भला इसे फिर कौन होश में लाये। फिर बतायें कि जो होश में ही नहीं आयेगा वह फिर क्या देखेगा।

सहज मार्ग को हमारे 'श्री बाबूजी महाराज' के कथनानुसार निम्न गरिमा भी मिली है। उनका कथन है कि "सहज–मार्ग system में मैंने पावन भाई–चारे का प्राण फूँका है"– उनके इस कथन ने हमारे अभ्यासी भाई–बहनों के समक्ष अपनी उन्नति के अवलोकन हेतु इस अनुभव को विशेषता प्रदान की है। हमारे में यह बात स्वतः ही उत्पन्न हो जाती है अर्थात् आपस में भाई–चारे का भाव स्वतः ही अंतर में पनपने लगता है। यह तराजू भी है हमारे लिये अपने को तौलने के लिए कि यदि इस साधना में प्रवेश पाकर भी हमारे अंतर में ऐसा भाव नहीं आता तो समझना चाहिए कि हमने सहज–मार्ग–साधना को ठीक तरह से नहीं अपनाया है। क्योंकि श्री बाबूजी का समस्त के हित का दैविक–संकल्प ही बीज रूप में साधना में मौजूद है। भाई, भाई–चारा भी ऐसा कि बसंत पंचमी महोत्सव में शाहजहाँपुर चाहे जितने भी दिन कोई रहे, आपस में प्रेम भाव में इतने रमे रहते थे कि घर की कभी भी याद नहीं आती थी। ऐसा हो भी क्यों न जबकि हृदय में ईश्वर–प्राप्ति का लक्ष्य है और पूर्ण करने हेतु श्री बाबूजी

की दैविक–प्राणाहुति का प्रवाह पाते रहने से परमानन्द का अनुभव मानों हमें खुद से वैरागी बना कर छोड़ देता है। जो हमारे अनुभव ने समक्ष में प्रत्यक्ष किया है वह यही है कि अपने सहज–मार्ग–साधना पद्धति की गरिमा स्वयं बाबूजी की प्राणाहुति–शक्ति का प्रवाह ही है।

सहज–मार्ग–साधना स्वयं ही मेरे लेखन द्वारा ध्यान के महत्त्व को उज्जवल कर चुकी है। इस पद्धति में सर्वव्यापी ईश्वर से अपने ध्यान या ध्यान के सुख का योग दिये रहने के अभ्यास से सतत्–स्मरण के साथ सतत्–ध्यान में रहने का भी वरदान मिल जाता है। बल्कि यूँ कहें कि सतत्–स्मरण के अभ्यास द्वारा ही एक दिन मैंने पाया कि हृदय में मेरी निगाह में मानो वह अंतर्यामी ही समा गया है और फिर मेरा ध्यान कभी इससे हट ही नहीं पाया। फलस्वरूप जब मुझे श्री बाबूजी महाराज की कृपा से दैविक सामीप्यता का सेंक हृदय में मिलने लगा, तब से तो मानो 'कस्तूरी' की कुल हस्ती ही पिघल गई। फिर शेष बच रहा मात्र 'ईश्वर'। फिर क्या करता Divine ? आख़िर उनकी शक्ति ने पिघली हुई कुल भौतिकता को मेरे अस्तित्त्व से ही बाहर फेंक दिया – शेष बचा विशुद्ध कस्तूरी हृदय। तब इस शेष के अवशेष को भी ध्यान द्वारा ही स्वयं में लय करना शुरू कर दिया। वास्तव में इस दैविक–दशा ने श्री बाबूजी महाराज के इस कथन की यथार्थता को समस्त के हित प्रकट कर दिया है कि अब Live in Master अर्थात् ईश्वरीय दशा में हमें प्रवेश मिल गया है। अब ध्यान की दशा हमें परमानन्द में डुबोये रखने लगती है। तब श्री बाबूजी ने मुझे लिखा था कि "ईश्वर में तुम्हारी लय–अवस्था शुरू हो गई है"। लालाजी तुम्हें और आगे बढ़ायें यही दुआ है तुम्हारे लिये, और यह भी लिखा था कि "आख़िर आदि को अनन्त का योग मिलता ही है"। मैंने पाया कि मानो यह Divine का भेजा हुआ हौंसला था जो जादू की तरह से सिर पर चढ़कर बोला था क्योंकि फिर डग ने कभी पीछे मुड़ना जाना ही नहीं। शक्ति में अनन्त–शक्ति का मेल कब क्रमशः होता चला गया, इस दैविक भेद या बाबूजी के जादू को मैं समझ ही न सकी। हाँ इतना समझ गई हूँ कि उनका दिया हुआ हौंसला मानो लक्ष्य के फ़ासले को कम करता गया।

श्री बाबूजी महाराज का कथन कि "प्रार्थना ही नहीं बल्कि सहज–मार्ग

सिस्टम ही ऊपर से उतरा है। इसे सजाया या संवारा नहीं गया है किन्तु इसमें प्रवेश पाकर जब मेरी साधना ने साध्य से योग पाया तब मैं अपने सहज–मार्ग का वास्तविक परिचय जान पाई हूँ। वह क्या है? दिव्य–शक्ति से प्रवाहित सतत्–धारा जो शाश्वत् है वह बाबूजी से योग पाये हुये सहज–मार्ग–साधना पद्धति में, अभ्यासियों के हित दैविक–श्रृंगार हित प्रवाहित है। एक रहस्य मैंने अब यह भी पाया है कि इस साधना–पद्धति द्वारा ही श्री बाबूजी महाराज ने Divine से मुझे सतत्–योग प्रदान किया है तथा मैंने सहज–धारा के रूप में सहज–मार्ग का साँचा परिचय पाया है। मेरे भाइयों मैं अपने श्री बाबूजी की दैविक–शक्ति पर स्वामित्त्व का यह मानों छोटा ही परिचय आपके समक्ष रख सकी हूँ।

अब एक तथ्य यह स्पष्ट हो जाता है कि जो भी चीज़ दैविक है वह समस्त के लिये होती है क्योंकि 'वह' सर्वव्यापी है, सर्वशक्तिमान है एवं सर्वअंतर्यामी होते हुये सबके हृदयों में विद्यमान है। इसीलिये सहज–मार्ग–साधना पद्धति में चाहे वह ध्यान हो, सफ़ाई हो या प्रार्थना सबका आधार ईश्वर से योग पाना ही है। यही कारण है कि जब मैंने सहज–मार्ग–साधना पद्धति के अनुसार पूज्य मास्टर ईश्वर सहायजी से तीन सिटिंग्स लीं तब मुझे ऐसा लगा कि मेरे अंतर में कोई चेतना, जो अब तक मानों सुषुप्त अवस्था में थी अब पूरी तरह से जाग उठी है और तभी से अंतर्मन मानों किसी की खोज में लग गया। बस तभी मुझे अंतर में craving का पता मिल गया। यह दशा लिखने पर श्री बाबूजी महाराज ने मुझे लिखा था कि हमारे यहाँ प्राणाहुति के प्रवाह से सुषुप्त हुई दैविक–चेतना, दैविक–प्राणाहुति शक्ति में नहाकर जाग उठती है। तभी से ईश्वर से लगाव पैदा हो जाता है और बुद्धि का व्यर्थ बातों को सोचना स्वतः ही कम होता चला जाता है। ध्यान में बैठने पर अन्य विचारों का आना रुकने लगता है और दैविक–बातों की समझ पैदा हो जाती है। इतना ही नहीं प्रशिक्षक द्वारा निरंतर ईश्वरीय–धारा का अपने अंतर में प्रवाह पाते रहने से अंतर्मन में दर्शन की लगन लग जाती है। वह बुद्धि के पूर्ण स्तर तक आ जाती है, फलस्वरूप जैसे सागर में आती लहरों के झाग सागर की गंदगी को ही मानो बाहर फेंकते हैं, उसी प्रकार से ईश्वरीय–धारा की लहरें हृदय एवं बुद्धि पर लगे कचरे को बाहर फेंकती हुई इसे उज्जवल एवं शुद्ध बनाती जाती है। तभी से अंतर में विद्यमान ईश्वरीय–प्रकाश

हमारे हृदय के साथ ही कुल अस्तित्व में फैलने लगता है। इसका भेद भी मुझे आज समझ में आ गया है कि जहाँ ईश्वरीय–प्रकाश व्याप्त है वहाँ भौतिकता का अंधेरा नहीं ठहर सकता है। यही कारण है कि ईश्वरीय–सामीप्यता की अनुभूति द्वारा क्रमशः तभी से स्मरण हमें आनन्दमय लगने लगता है। अंतर्शक्ति अन्य विचारों को अंतर से बाहर फेंकने लगती है और हमारा हृदय स्वतः ही सतत्–स्मरण में डूबा रहने लगता है। मन की गति ऊर्ध्वमुखी हो जाती है, मन एवं बुद्धि का दैविक–सम्मिलन हो जाने से अन्यथा बातें स्वतः ही हमें छोड़ने लगती हैं। तबसे ही मैंने अनुभव में पाया कि हमारे बाबूजी अहं–भाव के स्मरण से भी हमें मुक्त करते चलते हैं। ऐसी विशुद्ध अंतर–अवस्था को पाकर ही मेरे गीत की लाइन गुनगुना उठी थी कि "हमको परमानन्द में रखा है तुमने किस कदर, होश वीराना मगर थे गीत गाये किस कदर, देश जब प्रिय का था आया, ढूँढ़ते खुद को रहे"। श्री बाबूजी महाराज का अभ्यासी को ध्यान मे रखने को दिया हुआ लक्ष्य कि 'ईश्वर हृदय में विद्यमान है' जब सतत्–स्मरण द्वारा अभ्यासी, हृदय में पग जाता है तब से यह अनुभूति ही मानो हमारा स्वरूप बन जाती है या यों कहें कि वही (अनुभूति) अभ्यासी बन जाती है। ध्यान में पगा हुआ हृदय एवं उनकी मौजूदगी की अनुभूति, अभ्यासी का प्राण बनकर ईश्वर–प्राप्ति के लक्ष्य से चिमट जाती है– लेखिनी मज़बूर हो जाती है यह लिखने को कि "जब मैं था तब तूं नही, अब तूं है मैं नाहिं"। अपनी इस दशा को सहज–मार्ग का दैविक–चमत्कार कहूं या दैविक–प्यार कहूँ कि आज किसी शायर की शायरी मानो मेरी दशा के रूप में लेखनी में समाकर बोल उठी थी कि

"बल न छुटे काले बालों से अरू नै (ओठ) से फ़रियाद,
पल भर मणि न छुटे काले (नाग) से मुझसे तेरी याद।।"

अब क्या करे अनुभूति बेचारी, जब ध्यान अपने लक्ष्य अर्थात् ईश्वर में ही समाकर रह जाता है। तभी श्री बाबूजी का कथन दशा के रूप में हमारे अंदर उतर आता है कि याद ऐसी हो जो कभी न आये। तभी अंतर के अंतस् में सोई तड़प जाग उठती है क्योंकि ध्यान हृदय की गहराई पाकर ईश्वर के साथ हो लेता है। अंतर–दशा ऐसी हो जाती है कि "बैठे, सूते, पड़े, उतान जब देखें तब वही ठिकान"। अब मैने ऐसी दशा पा ली थी कि

मेरे ध्यान ने अपना ठिकाना पा लिया था, अर्थात् जिसका ध्यान था वह उसमें ही समा गया था। याद भी मुझसे किनारा कर गई थी। फिर आगे दशा पलट जाती है वह यह कि ख्याल आने पर मेरी लेखिनी ने तड़पकर यह दशा लिख दी कि "तड़प को देखा तड़पता, प्यास खुद को पी गई"। फिर जो शेष बचा उसे मेरे बाबूजी ने सँवारकर अपनी दैविक–निगाह में सहेज लिया। सच तो यह है भाइयों, कि 'प्रिय' की याद भूलने की पीड़ा तो मैंने सहन कर ली थी किन्तु दशा की बारीकी ने मुझे बताया कि अब जब दैविक–मिलन ने इस पीड़ा को मुझ में से निकाल दिया तो भला अब यह कहाँ जाये, क्या करे जबकि याद भी इसे त्याग कर साक्षात्कार की दिव्यता में समा गई थी। जानते हैं क्यों? क्योंकि यहाँ से ही तो उसका वियोग हुआ था। 'प्रिय' अर्थात् ईश्वर के हित श्री बाबूजी की प्राणाहुति–शक्ति का सहारा पाकर, खोजी मन ने ही तो इसे खोज निकाला था। आज अपने श्री बाबूजी से मेरी यही प्रार्थना है कि विरह की व्यथा के इस दैविक–कृपा–रत्न को दैविक साक्षात्कार के हित हर अभ्यासी–हृदय में स्थान मिले।

इस साधना का दूसरा महत्त्वपूर्ण भाग है 'सफाई'। संसार में सफ़ाई रखने के लिये हमारे पास अनेकों वाह्य साधन होते हैं। किन्तु अंतर की सफ़ाई हेतु तो मात्र आध्यात्मिकता ही है। अब देखें कि सहज–मार्ग–साधना पद्धति में इस अंतर–सफ़ाई का तरीका क्या है? तो सुनिये! वैसे तो प्रथम दिन से ही "ईश्वर हृदय में मौजूद है" ऐसा ध्यान रखने के अभ्यास से आंतरिक attention या वृत्ति–अंतर में धीरे–धीरे ईश्वर से ही सम्बन्ध का आनन्द पाने लगती है। इसके द्वारा ही हमारा हृदय निरंतर शुद्ध होता जाता है। फिर शाम को सफ़ाई का तरीका यह है कि समक्ष में विद्यमान श्री बाबूजी से पाई प्राणाहुति पाते हुये हम अभ्यासी यह विचार लेते हैं कि "साक्षात्कार पाने में जो भी बातें बाधक है वे सब साफ़ होकर पीछे से बाहर होती जा रही हैं और हमारा हृदय परम–शुद्ध होता जा रहा है।" अंतर की शुद्धता की इच्छा का संकल्प Divine power के झाड़न के सदृश श्री बाबूजी महाराज की दैविक–संकल्प–शक्ति का योग पा जाने से हमें तुरंत ही हृदय की शुद्धता का आभास मिलने लगता है। यद्यपि यह बात भी हमारे आध्यात्मिक उन्नति के लिये ज़रूरी है कि कोई बुराई हम से न हो ऐसा हमारा प्रयास भी सदैव रहना चाहिये। प्रयास हो, इच्छा हो

एवं दैविक–संकल्प की शक्ति का आधार हमें मिला हो तो फिर शुद्धता का आभास तो हमें मिलता ही है तथा साक्षात्कार पाने की दैविक–दशा भक्ति को सरल, सहज एवं सरस बना देती है। प्राणाहुति शक्ति द्वारा शुद्ध हृदय वास्तव में हृदय में ईश्वरीय मौजूदगी की अनुभूति को वास्तविक दशा का रूप दे देता है। क्रमशः हृदय ईश्वरीय–अनुभूति के दैविक आनन्द की अनुभूति में पगा ही रहने लगता है। इस 'पाग' की मिठास हृदय में भक्ति को जन्म देती है इसीलिये सहज–मार्ग–साधना सरस हो जाती है। क्रमशः ध्यान को रखने वाला स्मरण, सतत् स्मरण के परमानन्द में डूबकर फिर कभी उबरता ही नहीं है। जानते हैं क्यों? क्योंकि हृदय तो अवधूत–गति पाकर विभोर रहने लगता है। फिर mind की क्रियाशीलता को जब दैविक अवधूत गति का साया स्पर्श करने लगता है तो बहुधा सांसारिक–होश भी खो बैठता है। ऐसी दशा में ही मैंने पाया कि मानो श्री बाबूजी की मौजूदगी चाहे वे कहीं भी रहें हमें सदैव अपने पास ही मिलती है जो कि समय–समय पर हमारे होश को संभाले रहती है। यहाँ तक कि कभी अपने कपड़े–लत्ते के होश से बेख़बर रहते हुये भी मैंने या किसी घर वाले ने मुझमें कोई भी कमी नहीं पकड़ पाई। यहाँ तक होता था कि कभी मुझे लगा कि 'उन्होंने' श्री बाबूजी ने एक दम से हाथ मार कर मुझे सचेत किया है। किन्तु केवल तीन दिन ही मुझे इस अनजाने परम–आनन्द की दशा में रखकर वे मुझे इस परम दशा से ऊपर ले गए। ऐसा है उनका संरक्षण जो हर आध्यात्मिक–दशा में अभ्यासी को थामे रहता है।

प्रशिक्षक

मैने पाया है कि सहज–मार्ग में श्री बाबूजी महाराज अभ्यासी को प्रशिक्षक के रूप में, अभ्यासी भाई–बहिनों की आत्मिक–सेवा के लिये तैयार करते थे। वास्तव में संसार के समक्ष यह एक अनूठा एवं दैविक–कार्य का प्रतीक है। उनकी ही दैविक–इच्छा के फलस्वरूप जब जिस अभ्यासी में प्रेम और लगन की डोर ईश्वरीय–धारा का सतत् प्रवाह पाने के कुछ योग्य हो जाती थी, तब उस अभ्यासी के हृदय की लगन की डोर को ईश्वरीय–शक्ति के केन्द्र से, जो वातावरण में प्रतिष्ठित है और वातावरण को Nature के अनुसार शुद्धता देती रहती है योग देकर उस पर अपनी आज्ञा की मुहर लगा देते थे। जानते हैं क्यों? यह भी उनका एक दैविक–चमत्कार ही कहा जायेगा तो सुनिये– इसलिये कि, ईश्वरीय–शक्ति का प्रवाह तो अभ्यासी–हृदय पाये परन्तु प्रशिक्षक के मानव–स्वभाव की कमियाँ वहीं ठहर जायें और अभ्यासी–हृदय शुद्धता की ही ओर बढ़ता जाये। फिर प्रशिक्षक को बताते थे कि ध्यान में डूबकर या हृदय में ईश्वरीय–याद में डूबकर यह ख्याल करे कि ईश्वरीय–धारा का प्रवाह (transmission) अभ्यासी हृदय में प्रवेश कर रहा है और इसके द्वारा उसके हृदय में साक्षात्कार प्राप्ति करने के लिये जो भी unwanted things हैं वे सब साफ़ होकर पीछे की ओर से बाहर निकलती जा रही हैं। फिर यह ख्याल करे कि शुद्ध हुआ अभ्यासी हृदय, ईश्वरीय–धारा के प्रभाव से भक्ति व प्रेम में डूबता जा रहा है। मैंने पाया कि ऐसा प्रशिक्षण अति फलदायी होता है। उनके चरणों में रहकर मैंने पाया कि आपस में भक्ति व प्रेम में डूबी वार्तायें मानो हमें पावन भाई–चारे का सहज–योग प्रदान करती हैं। इतना ही नहीं यह आत्मिक–योग हमें forgetful state से बाहर ही नहीं आने देता चाहे हम कितने दिन भी उनके चरणों में रहें। यह उनका दैविक–शक्ति पर स्वामित्व था कि जब घर लौटते थे तो दशा के साथ मानो उन्हें भी साथ लेकर आते थे। वास्तव में सहज–मार्ग–साधना पद्धति श्री रामचन्द्र मिशन का पावन एवं दैविक–प्रतीक बनकर मानव–मात्र को ईश्वर–मिलन का दिव्य–संदेश देती रहेगी। उनकी दिव्य–शक्ति द्वारा बनाये प्रशिक्षक लोगों के हृदय में ईश्वर–प्राप्ति की चाह को बढ़ाते रहेंगे। यद्यपि एक बात अवश्य है कि वास्तव में हमारी लय–अवस्था प्रारम्भ होने पर तभी ही ऐसी दशा आती है कि तब हमें अभ्यासियों के आध्यात्मिक–सेवार्थ

श्री बाबूजी permission देने के बारे में सोच कर खुश हो जाते थे। किन्तु वह तो तब जब उन्हें मैंने पत्र में अपनी यह दशा लिखी थी कि "बाबूजी भक्ति की तन्मयता कुछ ऐसी है कि लगता है कि भक्ति खुद ही भगवान में डूबी हुई, तन्मय हुई होश खो बैठी है। मुझे ऐसा लगता है जहाँ भी बैठूँ, जिधर भी जाऊँ मुझ में से चारों ओर शक्ति का प्रवाह फैलता रहता है"। तब उत्तर में श्री बाबूजी ने मुझे लिखा था कि "वास्तव में तो स्वयं प्रशिक्षक की दशा तो तुम्हारी अब है क्योंकि जब शक्ति का प्रवाह तुम्हारे में से फैलता रहता है तो दूसरों के आध्यात्मिक–विकास के हित में तुमसे काम लेने के लिये आज्ञा अब देना चाहिये क्योंकि जो ईश्वरीय–शक्ति तुमसे चारों ओर फैल रही है उससे हमें काम लेना चाहिये ताकि शक्ति का सदुपयोग हो। इतना ही नहीं यह भी लिखा कि यह शक्ति तो Divine में लय–अवस्था के कारण तुममें है और जब यह शक्ति भी तुम्हारे में जज़्ब (लय) हो जायेगी तब तुम्हारा इस शक्ति पर स्वामित्व हो जायेगा। मेरी लाचारी यह है कि मैं इस दशा के आने तक प्रशिक्षण की आज्ञा देने का इंतज़ार नहीं कर सकता हूँ क्योंकि मेरे समक्ष अपने मिशन का काम और मानव–मात्र के हित ईश्वरीय–संकल्प को पूर्ण करना है। अतः इस तरह से अपने जीवन में कदाचित् मैं एक या दो अभ्यासी को ही प्रशिक्षण के कार्य की आज्ञा दे सकूँगा। मेरे लालाजी साहब का मैं शुक्रगुज़ार हूँ कि उन्होंने तुम्हारे में उस श्रेष्ठ–दशा को देख पाने का मुझे सौभाग्य दिया है।" अब बताइये कि क्या कभी ऐसी श्रेष्ठ–हस्ती धरा पर अवतरित हुई है कि जिसने मानव–मात्र के शीघ्र आध्यात्मिक–विकास के हेतु ईश्वरीय–शक्ति के सीमित–सर्किल से अभ्यासी–हृदय का योग देकर अन्य अभ्यासियों की सेवार्थ तैयार करने का बीड़ा भी उठाया हो। उनके द्वारा बनाया हुआ प्रशिक्षक जैसे ही यह विचार करेगा कि "ईश्वरीय–धारा का प्रवाह सामने बैठे अभ्यासी के हृदय में जा रहा है तो उसी Divine power के सीमित–केन्द्र से प्राणाहुति का प्रवाह शुरू हो जायेगा। शक्ति से काम लेना प्रिसेप्टर का कर्तव्य है। कदाचित् यही बाबूजी का यह कथन चरितार्थ हो जाता है कि मैंने तुम्हें चौबीस घंटे का प्रिसेप्टर नहीं बनाया है। काम के समय तुम प्रिसेप्टर हो और शेष समय में अभ्यासी के रूप में भक्ति में तन्मयता पाने के प्रयास में जुट जाने वाले अभ्यासी। उनके इस कथन में एक चातुर्य भी छुपा हुआ है कि उनके प्रशिक्षक में अहं न पैदा हो जाये।

"श्री बाबूजी का दैविक-शिक्षण"

सहज–मार्ग में श्री बाबूजी का दैविक–शिक्षण कहूँ या उनके दैविक–संकल्प की पूर्ति के हित अभ्यासी के प्रति उनका प्यार कहूँ, वह विलक्षण है। अवधूत गति से ऊपर ले जाने पर मैंने पाया कि सहज–मार्ग–साधना –पद्धति से श्रेष्ठ उनका दैविक–शिक्षण प्रारंभ हुआ था। वास्तव में उनकी दिव्य–देश की दशाओं की research का खुलासा होता हुआ मैंने तब पाया जबकि उनके द्वारा स्वतः उनके ही ध्यान में डूबा मेरा मन, ध्यान की गहराई को छूने लगा। अब सहज–मार्ग पद्धति द्वारा साधना की इतिश्री हो गई थी और ध्यान का केन्द्र अब वे स्वयं ही हो गये थे और शिक्षा–पद्धति दैविक हो गई थी। सहज–मार्ग–साधना ने मानो उनके चरण–चूमकर मुझे उनके ही चरणों में दैविक–शिक्षण हेतु सौंप दिया था मानो यह बता दिया था कि सहज–मार्ग की सहजता (naturalness) का वे स्वयं प्रतीक हैं। अब तो भाई मेरी लेखनी मानो उनके चरणों का स्पर्श पाकर उन्हीं पर न्यौछावर हो गई है।

ध्यान की गहराई में डूबता हुआ ध्यान, भक्ति में तन्मय हुआ मन जब Divine fomentation या ईश्वरीय–सेंक निरंतर पाने लगता है, बस तब से ही श्री बाबूजी ने मेरे पत्र के उत्तर में लिखा था "मैं बहुत खुश हूँ कि लालाजी साहब की कृपा से तुम्हारी लय–अवस्था शुरु हो गई है।" अब आप जान गये होंगे कि श्री बाबूजी द्वारा कथित लय–अवस्था का परिचय कहां से हम पाने लगते हैं तभी तो इतना गहन है इसका महत्व। श्री बाबूजी द्वारा कथित इस अनमोल–अवस्था का प्रारम्भ हो जाना बताता है कि अब मैंने ईश्वर–प्राप्ति के हेतु, ईश्वरीय–देश में अपना स्थान पा लिया है। इतना ही नहीं उनके इस कथन का अनोखा दर्शन, एवं भूमा की शक्ति पर उनके स्वामित्व का परिचय तो हमें तब मिलता है जब डिवाइन–साक्षात्कार का पावन समय आने पर उनकी दैविक–इच्छा शक्ति में कैद अहं के सोलह circles को भी मानो उन्होंने मुक्ति देकर मेरे साथ ही दिव्य–साक्षात्कार देकर ईश्वरीय–देश में ईश्वरीय–शक्ति के मुख्य–केन्द्र में लय कर दिया था। इतना ही नहीं उनके दैविक–शिक्षण की चरम–सीमा का दर्शन, जो अपनी research के बारे में अनुभूति द्वारा लिख पाने के लिये उन्होंने मुझ में उतारा है, और वह दिव्य–दृष्टि, जो उन्होंने साक्षात्कार

के बाद आगे के दर्शन हेतु मुझे प्रदान की है, देखिये अब वह क्या बोल रही है? आगे श्री बाबूजी महाराज की दिव्य–विभूति का कमाल तो देखिये कि "मुझे ईश्वरीय–शक्ति के केन्द्र–बिन्दु में गोता देकर मानो मानव–लक्ष्य 'साक्षात्कार' प्रदान करके आदि–केन्द्र अर्थात् Ultimate के देश में प्रवेश देने के पहले उनकी दिव्य–विभूति के अनन्त–क्षेत्र, अर्थात् Centre Region के प्रवेश–द्वार अर्थात् सत्य–पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। तब दूसरा रहस्य भी मेरे समक्ष उजागर हो गया वह यह, कि साधना से लेकर क्रमशः सूक्ष्म फिर सूक्ष्मातिसूक्ष्म अहं को भी उन्होंने मुझमें से लेते हुये ईश्वरीय–देश तक सोलह circles में मानो कैद करके मुझे इससे परम स्वतन्त्रता प्रदान करते हुये ईश्वरीय–शक्ति के मुख्य केन्द्र में गोता दिया तो अहं वहीं समाकर रह गया। फिर भला मैं उसे कहाँ और कैसे मिलती तब अंतिम–सत्य की गोद में अर्पण करने के लिये उन्होंने Identity को स्वीकार कर अपने ही Divine संकल्प में प्रवेश देकर Centre Region के महत्–देश में swimming देना प्रारंभ कर दिया। अब आप ही बतायें कि जब लेखिनी भौंचक थी यह दैविक–नज़ारा देखकर श्री बाबूजी महाराज को लिखने के लिये कि "मेरे ऊपर पुष्प बरस रहे हैं लेकिन पुष्पों का स्पर्श तो मैं नहीं पा रही बल्कि मानो मेरे में धीमी–धीमी दैविक–शक्ति प्रवेश कर रही है।" श्री बाबूजी का उत्तर था कि दैविक–पुष्प का स्पर्श तुम इसलिए नहीं पा सकीं क्योंकि धीमी किन्तु दैविक–शक्ति का वे प्रतीक हैं। मैं बेहद खुश हूँ– मेरे लालाजी तुम्हें अन्तिम–सत्य के 'सत्य दर्शन' की दिव्य–दशा प्रदान करें।" भला कौन चितेरा इस अद्भुत दिव्य–चित्र का चित्रण कभी कर पायेगा। कौन लेखिनी अभ्यासी एवं मानव–मात्र के प्रति उनके समूचे प्यार के साथ उनके डिवाइन एवं दिव्य–कार्य को लेखन–बद्ध करके समस्त के प्रति उजागर कर पाती, यदि आज वे अपनी इस बिटिया के लिये पुनः प्रत्यक्ष होकर इस लेखिनी को न थाम लेते।

ऐसा दिव्य अवतरण धरा पर न कभी आया है और न कभी आयेगा। साधना में आदि से अनन्त तक मुझ पर कुल Research पूर्ण करके मानव–कल्याण हित उन्होंने कोई आवश्यकता ही नहीं रखी है। ऐसा दिव्य कमाल कभी हुआ ही नहीं कि साधना के साथ प्राणाहुति–शक्ति का प्रवाह हृदय से हृदय में दे कर दैविक–प्रशिक्षण का मालिक होकर कोई उतरा हो। किन्तु प्रशिक्षण का 'मालिक' तो

वह तभी होगा जिसे आदि–केन्द्र की आदि–शक्ति पर स्वामित्व प्राप्त होगा जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण मैंने अपनी प्रत्येक पुस्तक में दिया है। कदाचित् आदि–शक्ति पर स्वामित्व की प्राप्ति होने के कारण ही आज सहज–मार्ग पद्धति में प्रशिक्षक की प्रक्रिया उनकी कृपा की ही देन है। उनकी Research ने यह सिद्ध कर दिया है कि "सर्वप्रथम जो भी bondage (माया का आवरण, अहं का रोड़ा आदि) ईश्वरीय–साक्षात्कार में अभ्यासी की उन्नति में बाधक हो सकते हैं, वह उन्होंने साफ़ कर दिये और अब वे समस्त के लिए सदैव के लिए समाप्त हो गये हैं। उनके स्वामित्व ने अपनी दिव्य–इच्छा शक्ति द्वारा मानव–अहं को, जिससे छुटकारा पाना असंभव रहा है, 16 circles में क़ैद करके यह प्रमाणित कर दिया है कि अब जो हम अभ्यासी नहीं कर सकते हैं अब वे ही अपनी इच्छा–शक्ति द्वारा ego के बंधन से भी मानव को मुक्त करने का बीड़ा उठाये हैं। इसके आगे साक्षात्कार के बाद मैंने पाया कि सत्य–पद पर प्रतिष्ठित करके अभ्यासी को Ultimate के वैभव–केन्द्र Central Region में प्रवेश देते हैं और कृपा तो देखिये कि अपने Divine संकल्प की नाव में लेकर उसमें पैराव भी वे ही दे देते हैं।

तो अब आगे की दशा एवं उनके दैविक–शिक्षण की चरम सीमा में आइये और देखिये कि यह किस दैविक–चमत्कार का चित्रण है समक्ष में। प्रथम तो यह कि अपनी बिटिया (कस्तूरी) को धरा पर चलता–फिरता एवं सांसारिक–कार्यों, कर्त्तव्यों एवं व्यवहार में विचरता हुआ भी रखे हुये हैं और यह Divine चमत्कार भी देखिये कि Identity को अपने दिव्य–संकल्प में प्रवेश देकर Central Region में swimming देते हुये अपने प्रिय अनन्त देश की यात्रा में भी लिए जा रहे हैं। मात्र उनकी दिव्य–दृष्टि द्वारा ही चालीस वर्ष पहले पाई हुई दशा को, आज समस्त के हित समक्ष में व्यक्त कर पा रही हूँ। यह दिव्य–रहस्य भी समस्त के हित अपने लेखन द्वारा आज उजागर करने जा रही हूँ कि श्री बाबूजी की हस्ती हमारे बीच में रहते हुये अपने मुख्य–केन्द्र से ही योग पाये हुये थी। उनकी दी हुई दिव्य–दृष्टि द्वारा उस समय मैंने पाया था कि मानो अपने घर अर्थात् भूमा के केन्द्र में रहते हुये, वे मुझे अपने साथ अपने पार लिये जा रहे हैं।

उनकी ही दिव्य–दृष्टि मानो समक्ष में फैले इस Divine रहस्य को भी समस्त के हित स्पष्ट कर देना चाहती है कि वे भूमा के द्वार तक कैसे हमारी यात्रा में चार–चाँद लगाते हुये हमें वहाँ प्रवेश देते हैं। यह अद्‌भुत दैविक–रहस्य है इसको मानो लेखन–द्वारा वे ही उतार रहे हैं। अब समक्ष में है Centre Region का मुख्य केन्द्र–बिन्दु जहाँ लेखिनी शब्द नहीं लिख रही है बल्कि सच तो यह है कि यह नज़ारा स्वयं मेरी लेखिनी में उतर आया है और तभी लेखिनी उठ पाई है इसे व्यक्त कर पाने के लिये। कैसा दैविक आश्चर्य है यहाँ कि शब्द भी खुद ही बोलते हैं एवं शब्दों की क्रम–बद्धता स्वयं ही बन जाती है। और मैं? "मैं बैठी यह अद्‌भुत देखौं"। अब देखें कि भूमा के इस वैभव–देश अर्थात् Central Region के मुख्य–केन्द्र में कैसे बाबूजी लाये। अचानक मैंने पाया कि मेरी Identity भी इस बिन्दु में (मुख्य केन्द्र–बिन्दु) समा गई यानी शेष का शेष भी जब समा गया तो फिर शेष क्या बचा? कैसे बाबूजी अपने कथनानुसार "नहीं है को है" मानकर, अर्थात् Identity cannot identify itself को या यों कहें कि खुद से भी बेख़बर Identity को अपनी कृपा में ही लय कर लेते हैं। अब आगे जहाँ शक्ति की भी गुज़र नहीं है वहाँ की मौन यात्रा पर ले चलते है। भला बतायें कि मेरी लेखनी का भी कलेजा मुँह को न आये यह कैसे हो सकता है जब कि मेरे बाबूजी अपनी दिव्य–पुस्तक "Efficacy of Raj Yoga" में लिखित भूमा की डयौढ़ी तक ले जाने के लिये सात रिंग्स जो भूमा के सप्त–द्वार की तरह से हैं, में प्रवेश देते हैं। प्रथम रिंग या द्वार में जब उन्होंने मुझे प्रवेश दिया तो मैंने पाया कि मानो रचना (creation) की शक्ति इन वृहत् वृत्तों से होकर ही गुज़री है। जानते हैं क्यों? क्योंकि आद्रि–शक्ति (भूमा) के क्षेत्र से लगा हुआ प्रथम वृत्त, जो आकार में सबसे छोटा है, अनन्त–शक्ति से योग पाये हुये अनन्तता का ही द्योतक है। इससे लगता है कि रचना अथवा creation की शक्ति जो उतरी वह वृत्तों में बदल गई क्योंकि शक्ति में घनत्व अधिक था। फिर ज्यों–ज्यों शक्ति का रूख़ नीचे को होता गया तो क्रमशः एक–एक वृत्त सिमटता चला गया। मानो दिव्य–आदि–प्रकृति ही शक्ति को सीमा–बद्ध करती गई। शक्ति में घनत्व का कारण यही था कि शक्ति के केन्द्र में 'रचना' हो, इस Divine इच्छा का स्पन्दन होते ही सृष्टि अर्थात् रचना के लिये जितनी शक्ति की आवश्यकता थी वह मुख्य–केन्द्र से बाहर आकर वृत्तों के रूप

में हो गई और उसका झुकाव नीचे होता गया। क्रमशः शक्ति के क्रियान्वित होते जाने से रचना प्रकाश में आती गई। इसी प्रकार Divine की ही इच्छा द्वारा कि "ऐसी महत्–शक्ति धरा पर अवतरित हो जिससे मानव–मात्र के हृदय, जो ईश्वरीय–शक्ति को भुलाये हुये, खुद के गुमान में गुम (खो गये) हो गये हैं, में ईश्वरीय शक्ति का जागरण भर कर, मानव–मन में ईश्वर–प्राप्ति की इच्छा पुनः जगाये।" इस दैविक–इच्छा को पूर्ण करने के लिये ही समर्थ सद्गुरू लालाजी साहब ने संकल्प लेकर अपने सात–माह की अथक–साधना से अपनी प्रार्थना के स्पन्दन द्वारा आदि–शक्ति के आदि–केन्द्र से भूमा के अंश–रूप श्री बाबूजी महाराज अर्थात् श्री रामचन्द्र जी महाराज (शाहजहाँपुर, यू.पी.) को धरा पर अवतरित किया। यदि श्री बाबूजी महाराज अपनी कुल Divine research के द्वारा मुझे इस श्रेष्ठ–स्तर तक न लाते तो यह इतना महत्–दैविक–भेद छुपा ही रह जाता। श्री बाबूजी महाराज के लेखन द्वारा हमें इतना पता तो मिला कि "समर्थ श्री लालाजी साहब फतेहगढ़, यू. पी. Spiritual giant थे। उन्होंने सात माह में अपनी साधना पूर्णकर ली किन्तु उनकी साधना क्या थी, साधना–पूर्ण में न तो साक्षात्कार का जिक्र है और न साधना का। समर्थ ने तो बस इतना ही लिखा है कि उनका 'संत–मत' था। अंततः इस दैविक–रहस्य का उद्घाटन, दिव्य–विभूति श्री बाबूजी ने मेरी पुस्तकों के लेखन में, मेरे समक्ष रखकर समर्थ की समर्थता का साँचा परिचय देकर मानो चार–चाँद लगा दिये हैं। भूमा की शक्ति के मुख्य–केन्द्र में दस्तक देकर अपनी प्रार्थना पहुँचाने वाले 'वे' वास्तव में Spiritual giant ही थे। समर्थ को आदि का रत्न मिला, एवं मानव–मात्र को सृजन हार की शक्ति रूप अपने श्री बाबूजी द्वारा पुनः उबर पाने का आध्यात्मिक–सौभाग्य मिला। धरा के साथ यह युग भी समर्थ–सद्गुरू का सदैव ऋणी रहेगा। आने वाली सदियाँ नत–मस्तक हुई अपने बाबूजी महाराज पर ही न्यौछावर होकर परमानन्दमय हो जायेंगी।

"श्री बाबूजी की अनुपम कृपा एवं अद्वितीय दैविक-शक्ति"

अब दैविक–लय–अवस्था में विलीन करते हुये मेरे श्री बाबूजी महाराज ने दैविक साक्षात्कार देने के बाद एक और दैविक–तथ्य मेरे समक्ष में रखा है मानो वही आज कुछ अपने विषय में लिखवाने को तत्पर हैं, वह यह कि उस पारस (ईश्वर) में लोहे, अर्थात् अभ्यासी का ईश्वर में समा कर फिर लय हो जाना तो कुछ समझ में आता है क्योंकि वहाँ तक पहुँच पाना तो मानव–गम्य है। दूसरे शब्दों में पारस का स्पर्श पाकर लोहे का सोना बन जाना तो सबने सुना है, क्योंकि यह तो Nature का एक चमत्कार है। किन्तु श्री बाबूजी की महत्–शक्ति की गरिमा का यह परिचय तो अलौकिक है कि "साक्षात्कार पाने पर भक्त दैविक–सौंदर्य से जगमगा उठता है और यह दैविक–तथ्य दशा के रूप में हमारे समक्ष में होता है कि :–

"जो लोहे को सोना कर दे वह पारस है कच्चा, जो लोहे को पारस कर दे, वह पारस है सच्चा।" अर्थात् अभ्यासी के द्वारा समस्त के हित ईश्वरीय शक्ति का प्रवाह, अब हमसे स्वतः ही प्रवाहित होता रहता है। श्री बाबूजी की इस दिव्य–गरिमा को अपनी दशा के रूप में जब पत्र में मैंने लिखा था तब उन्होंने उत्तर में मुझे लिखा था कि "इस हालत में अब अभ्यासी दूसरे लोगों की आध्यात्मिक–सेवा हेतु पूर्ण–शक्ति व सामर्थ्य के साथ तैयार हो जाता है। मुझे खुशी है एवं हमारे लालाजी का आशीर्वाद तुम्हारे साथ है कि तुम अभ्यासी को आध्यात्मिक–क्षेत्र की श्रेष्ठ दशा तक ले जाने की क्षमता से प्रिसेप्टर के कार्यहित तैयार हो गई हो। मैं इस दशा के आने का इंतज़ार नहीं कर सकता हूँ इसीलिये, लोगों को मिशन के बारे में बताने हेतु मैं Divine-power के लघु–केन्द्र से अभ्यासी के हृदय को योग देकर उन्हें प्रशिक्षण हेतु प्रिसेप्टर बना देता हूँ। भाई, क्या कहूँ, कैसे लिखूँ श्री बाबूजी महाराज के सहज–मार्ग सिस्टम की गरिमा। ईश्वर–मिलन की दिव्य–दशा में मिलने के बाद जब तड़प ने भक्ति व प्रेम के सहित सम्पूर्ण अहं को भी अपने में लय कर लिया तब दैविक सत्य–कथन मैंने यह पाया कि साक्षात्कार देने के बाद

मेरे श्री बाबूजी ने मुझे ईश्वरीय–क्षेत्र के मुख्य–केन्द्र में गोता देकर, मानो ईश्वरीय–शक्ति से नहलाकर, ईश्वरीय शक्ति के सहित, ईश्वरीय–सौंदर्य से सजाकर सत्य–पद पर ला खड़ा किया तो भला कौन लिख पायेगा कि हम क्या दशा पा गये? हाँ, वह तो दिव्य–दशा ही बता पायेगी। मैं तो बस इतना कह पाऊँगी कि मानो मेरे बाबूजी ने दैविक–पारस बनाकर मुझे सत्य–पद पर प्रतिष्ठित कर दिया था। अब क्या कहेंगे आप? बस मेरी लेखनी के इस नेह–निमंत्रण की ओर ध्यान दीजियेगा कि "अब उन दिव्य–ऋषि की वाणी के सत्य होने का समय आ गया है कि "हे धरा पर विचरने वाले प्राणियों, यदि तुम्हें चाहना ही करनी है तो भूमा की चाहना करो"। आज श्री बाबूजी की सहज–मार्ग–साधना के अंतर्गत ईश्वरीय–प्राणाहुति–शक्ति का प्रवाह अंतर में पाकर उन आदि–शक्ति के श्रोत की कृपा में भींगकर मानो सजग होकर, वह वाणी सत्य हो उठी है। युग ने मानो सत्–युग अर्थात् ईश्वरीय–युग के सौन्दर्य से परिपूर्ण हो उठने के लिये ही दिव्य–विभूति श्री बाबूजी महाराज के चरणों में शरण ली है। धरा ने इस आदि युग–पुरूष के चरणों का चुम्बन पाकर अपने को पावन एवं धन्य बना लिया है। समर्थ सद्गुरू अपनी प्रार्थना की सार्थकता के दैविक–फल–स्वरूप, भूमा के इस दिव्य रत्न को अंतिम–सत्य की चौखट से माँग कर धरा पर उतार लाये हैं। आज मानव केवल Ultimate के नाम से ही परिचित नहीं हुआ है वरन् ईश्वरीय–साक्षात्कार से भी श्रेष्ठ एवं गहन दिव्य–दशाओं एवं अब तक अपरिचित भूमा (Ultimate) के परिचय से समस्त को अवगत ही नहीं कराया है बल्कि वहाँ तक की दिव्य, अद्वितीय दशाओं की दिव्य–अनुभूतियों को भी शब्दों में उतार कर लिख पाने की क्षमता भी आज अपनी इस बिटिया को प्रदान की है। इतना ही नहीं जैसे माता के सामने बैठा बालक, माता के मुख को निहार कर कुछ लिखता जा रहा है, वैसी ही दशा में मेरी लेखिनी आज क्या, क्या लिख पाती है, यह तो अंत में पढ़ने के पश्चात् ही पता लगता है। सच कहा जाये तो अपरिचित भूमा या Ultimate की गरिमा को दिव्य–दशाओं के सौंदर्य से सजाकर उघारने का साहस उनके दिव्य–अंश के अतिरिक्त भला कौन कर सकता था। यह सत्य–कथन

आज प्रत्यक्ष भी हो गया है कि जब किसी अपरिचित का परिचय देने वाला कोई हमें मिल जाता है तब धीरे–धीरे इसकी मान्यता समस्त के प्रति उज्ज्वल होने लगती है। आज भूमा अथवा Ultimate की शक्ति का प्रतीक बनकर ही हमारे श्री बाबूजी महाराज ने उस दिव्य–अप्रत्यक्ष की प्रत्यक्षता को धरा पर मानव–मात्र के हित प्रकट किया है। अनन्त–आदि–शक्ति की प्रभुता से ही मानव–मात्र के हृदय में दैविक प्राणाहुति–शक्ति का प्रवाह देकर हृदय को दैविक–पावनता प्रदान की है और मानव हित आत्मिक–उद्धार के साथ ही उनमें आत्मिक–शक्ति का जागरण भी दिया है। मैं तो आज यह सत्य तथ्य भी लिखने को विवश हो गई हूँ कि श्री बाबूजी महाराज की दैविक–महिमा को पूर्णतः जानने के लिये एवं भूमा के परिचय से खुद को सजाने के लिये हम अभ्यासियों को सर्वप्रथम दैविक–विराट् में लय–अवस्था प्राप्त करते हुये ही भूमा के वैभव–केन्द्र सेन्टर–रीजन में प्रवेश मिल पाता है। यह ध्रुव–सत्य मैंने सहज–मार्ग–साधना में प्रवेश पाने पर स्वयं को इस दशा में पाते हुए ही अनुभव किया है। उस अनन्त–यात्रा की दिव्य–अनुभूतियों को पुस्तक के रूप में समस्त के हित रख पाने में, उनकी प्रत्यक्षता को सामने पाकर ही मैं सफ़ल हो सकी हूँ।

भूमा

किसका एवं कैसा दैविक और अनुपम परिचय है यह कि जिसे प्रत्यक्ष कर पाने के लिये उस परम–शक्ति के पुन्ज को ही धरा पर प्रकट होना पड़ा है। परिचय जो मैंने पाया है श्री बाबूजी के अनन्त–प्यार का जिसने बार–बार पुकार कर मुझे समझाया है कि "समुद्र के समुद्र पी जाओ पर, मुख से यही निकले कि 'और लाओ, और लाओ"। वह अलौकिक–परिचय ही आरंभ से लेकर आदि–Nature के सौंदर्य को हममें बिखेरता हुआ, संसार के परे अनुपम–सौंदर्य में हमें विलय करके, संसार को मात्र दैविक–मुस्कान के रूप में हमारे समक्ष रख देता है। एक अलौकिक–आश्चर्य जो अब मैं पा रही हूँ कि लोग, आज ब्रह्माण्ड–मण्डल, पारब्रह्माण्ड मण्डल, हिरण्यगर्भ एवं सैंटर–रीजन तक के बारे में, ऐसे बात करते हैं कि मानो वह इन सबसे परिचित हैं। जानते हैं क्यों? क्योंकि समस्त दैविक परिचय एवं अनन्त की अनन्तता का सौंदर्य बिखेरने वाले अनन्त–दैविक–शक्ति के प्रतीक–स्वरूप श्री बाबूजी के पावन–चरणों का स्पर्श धरती ने पा लिया है। आज मैं पा रही हूँ कि अब तक अपरिचित रहे भूमा का समस्त के हित दशाओं के सहित तथा वहाँ की शक्ति का भी अपने श्री बाबूजी की कृपा से ही अपने लेखन द्वारा कुछ परिचय दे पाई हूँ। हर मण्डल, हर वातावरण के विषय में लिख पाना उनके द्वारा पकड़ाई हुई लेखनी द्वारा ही सम्भव हो सका है। परन्तु आज आप मेरे बाबूजी के विषय में पूछेंगे तो मैं भला क्या बता पाऊँगी और कैसे बता पाऊँगी? जानते हैं ऐसा क्यों है? क्योंकि यदि कोई दूसरा हो तो परिचय भी उसका कोई होता ही है लेकिन जो स्वयं से भिन्न कुछ नहीं है फिर भला उसका परिचय भी क्या हो सकता है और कैसे दिया जा सकता है। सर्वव्यापी का साक्षात्कार तो पाया जा सकता है किन्तु परिचय से तो यह भी परे है इसी कारण असंभव है उसका परिचय दे पाना। संत कबीर की वाणी भी यह कहकर मौन हो गई थी कि "हद, अन–हद के बीच में रहा कबीरा सोय" अर्थात् ईश का परिचय तो साक्षात्कार पाने पर उनकी प्रतीति ने पा लिया था। लेकिन आगे इसके पार जो उन्हें अनन्तता के एहसास की महक मिल रही थी उसका परिचय पाने के लिये मानो वे साक्षात्कार के परमानन्द में डूबकर खो

गये थे-- फिर भला कौन लिख पाता। रहस्यमय–नज़ारा तो मैंने समक्ष में उस समय उज्जवल हुआ पाया जब साक्षात्कार के सौभाग्य से सजाकर अपनी दैविक–research की पूर्णता हेतु, भूमा की शक्ति पर स्वामित्व पाये हुये मेरे बाबूजी ने, अपने दैविक–संकल्प में मेरे शेष अस्तित्व को प्रवेश देकर भूमा के वैभव के केन्द्र Centre Region में प्रवेश दिया था। इतना ही नहीं अब समस्त के हित अन–हद का प्रवेश द्वार सदैव के लिये खुला छोड़ दिया है। कदाचित् यही कारण रहा है कि मेरी हर पुस्तक में मानो स्वयं बाबूजी ने यह लिखाया है कि अब कोई दूसरा कबीर हद के पार अन--हद अर्थात् अनन्तक्षेत्र में प्रवेश के हित ''रहा कबीरा सोय,'' नहीं लिख पायेगा। इस प्रकार कबीर के कथन की दशा का भी परिचय हमने पा लिया है।

आगे सुनिये, कितना यथार्थ नाम श्री बाबूजी ने सैन्टर–रीजन के प्रवेश–द्वार को दिया है 'पार्षद' यानी प्रहरी, जहाँ प्रथम--मानव अपने परिचय से भी अपरिचित हुआ स्थापित हुआ था अर्थात् 'सत्यपद' जो मानव के बैठने का साँचा आदि–पद था। कितना आश्चर्य है, भला यह लेखनी अपने होश में रहे, यह कैसे सम्भव हो सकता था ऐसे लेखन के लिये, किन्तु! अचानक दैविक–मुस्कान ने मानो मुझमें होश की कौंध भर दी और लेखनी झुक गई ऐसे, मानो 'उनके दैविक–चरणों के स्पर्श में उलझ गई हो'। हाँ जब दैविक–होश ने मुझे ललकारा तब स्वयं के लेखन को पढ़ पाने का मानो मुझे सौभाग्य मिल पाया था। मैं विभोर हो उठी थी। एक अलौकिक–आश्चर्य था, आप यह भी तो देखें कि क्या दैविक–दृष्टि पाये बिना ऐसे दृश्य का Truth आप पर प्रकट हो पाता कि कैसे मेरी Identity को उन्होंने अपने दैविक–संकल्प में प्रवेश देकर सेन्टर–रीजन में swimming प्रदान की थी। आज हमारा सौभाग्य आध्यात्मिक–क्षेत्र में उज्जवल होकर यूँ मुस्कुरा रहा है कि 'Identity' का भी परिचय देकर उन्होंने मेरे लेखन को दैविक–सौंदर्य से सजा दिया है। कैसी दैविक अनुभूति उन्होंने मुझे प्रदान की थी कि मैंने पाया कि ego के सोलह सरकिलों को उन्होंने ईश्वरीय--शक्ति के मुख्य–केन्द्र में गोता देने के साथ उसमें (मुख्य केन्द्र में) लय कर दिया था और शेष Identity अर्थात् अहं के मात्र भाव को अपने 'दैविक–संकल्प' में लय कर लिया था। जानना चाहेंगे कि ऐसा कैसे सम्भव हो सका

है? तो सुनिये, दिव्य–विभूति मेरे बाबूजी महाराज ने अपने Divine संकल्प द्वारा ही हर श्रेष्ठ–दशा एवं ऐसी दिव्य–दशाओं को मुझ में उतारा है। इतना ही नहीं, वरन् उनमें लय अवस्था प्रदान करते हुये अनुभूति के रूप में समस्त के हित दिव्य–संदेश के रूप में आज मानो स्वयं भूमा ने उनकी ही दिव्य–Personality का यह परिचय हमारे समक्ष रख दिया है। मैंने पाया है कि वास्तव में श्री रामचन्द्र मिशन के अंतर्गत सहज–मार्ग–साधना पद्धति का दैविक–गौहर भक्ति–रस में डूबे अभ्यासी को ही प्राप्त हो सकता है। भक्ति की मंज़िल के पार साक्षात्कार की दशाओं के मुख्य स्तर की research में उन्होंने A से Z point तक गिनकर, फिर इसकी पुनरावृत्ति करके अर्थात् बावन point तक गिनकर पत्र में मुझे लिखा था कि अब गिनना असंभव हो गया है। आगे तो मेरी लेखनी जो निरंतर उनके दैविक–चरण–स्पर्श को हृदय से लगाये रही है, वही सदैव कुछ न कुछ दिव्य–गतियों का परिचय अनुभूति में पागकर मुझे देने के लिये सदैव तत्पर रही है और रहेगी।

वास्तव में सहज–मार्ग–साधना मात्र हमारे श्री बाबूजी महाराज की Divine Will ही है, जो हम अभ्यासियों को इसके द्वारा श्रेष्ठ–दशाओं के योग्य तैयार करती हुई हमें अंतिम–सत्य तक ले चलती है। कदाचित् यही कारण है कि मैंने अभ्यास काल से लेकर अब तक उनकी सामीप्यता का सहज साया ही पाया है। आज मेरी समझ में श्री बाबूजी महाराज का कथन आ गया है कि "सहज–मार्ग" ऊपर से उतरा है इसे बनाया नहीं गया है। मैं तो आज समस्त के हित उनके प्यार भरे सहज–मार्ग का यह दैविक–प्रसाद बाँटना चाहती हूँ कि "भूमा के दैविक–अंश के रूप में आज हमें श्री बाबूजी महाराज के ही पावन–चरणों का सहारा मिला है।" तभी तो आज उनके दिव्य प्यार एवं अवर्णनीय दिव्य–research ने साधना में आदि से लेकर अनन्त तक की यात्रा में हर दशा की अलौकिक अनुभूति को ही मानो सहज–मार्ग नाम दिया है। कदाचित् इसीलिये मैंने यह सत्य भी समक्ष ही देख लिया है कि वास्तविक सहज–मार्ग वहाँ से शुरु होता है जो अपने मिशन के ऐम्बलम के मध्य दर्शाया गया है। सहज–मार्ग system में साधना प्रारम्भ करने पर जब मेरे बाबूजी महाराज ने मुझे इस ऐम्बलम के मध्य सहज–धारा में प्रवेश दिया तब मैंने पाया था कि यहाँ

सतत्–रूप से Divine power का प्रवाह, प्रवाहित है। वास्तविक सहज–मार्ग यही है। मैं आज सहज–मार्ग system व मुख्य–दैविक सहज–मार्ग के इस गहन–रहस्य का भेद पा सकी हूँ। अब बताइये भला आप कैसे कहेंगे कि हमारा सहज–मार्ग क्या है।

आज जब समस्त दैविक–गहनता के रहस्य को श्री बाबूजी महाराज समस्त के हित उज्जवल करना चाहते हैं तो एक डेनिस अभ्यासी के प्रश्न के उत्तर में इस रहस्य को भी मैं उसके समक्ष में रख रही हूँ। उनका प्रश्न था कि यह अपने Emblem के प्रारम्भ में नीचे के इस 卐 स्वास्तिक चिन्ह को रखने का क्या अर्थ है? वास्तव में इस तथ्य का उज्जवल होना भी आवश्यक है, तभी तो श्री बाबूजी महाराज ने इसका परिचय भी मेरे समक्ष उज्जवल कर दिया है। इस स्वास्तिक चिन्ह की चारों लकीरों का मुख चारों दिशाओं में है जो इस बात का द्योतक है कि यह system चारों दिशाओं में फैलेगा। वैसे यह system जो प्राचीन काल से चला आ रहा है कि हर सांसारिक शुभ–कार्य भी इसी चिन्ह को रखकर प्रारंभ किया जाता है तो शायद ऋषि, मुनियों के पास यह आत्मिक–शक्ति थी कि वे उस शुभ–कार्य की महक से चारों दिशाओं को महका सकते थे। मेरे अंतर की दृढ़ता मानो पुकार कर कह रही है कि यह श्री बाबूजी की परम–शक्ति की पुकार है कि "हमारा सहज–मार्ग पूरी दुनियाँ में राज्य करेगा अर्थात् इस Divine power से सारे विश्व के नहाने का समय अब समीप आ गया है – हमारे मिशन के Emblem का यह स्वास्तिक–चिन्ह इसका ही सजीव–प्रतीक है। यह सांसारिक शुभ–कार्यों को ही नहीं दर्शा रहा है, बल्कि यह भी बता रहा है कि सहज–मार्ग system द्वारा Divine power की सहज और अविरल–धारा आज भूमा के दैविक–प्रसाद से धरा को पूर्ण बना रही है। मेरा गीत कदाचित् इसी भाव में विभोर होकर गुनगुना उठा होगा कि :–

"श्री लालाजी समरथ–गुरू की हम शरण–चरण बलिहारी हैं,
जिन (बाबूजी) को मिलाय दिया अब राम का नाम लिया न लिया।।"

अभी तो मैं अपने मिशन के Emblem एवं सहज–मार्ग की गरिमा का मात्र यह छोटा सा परिचय ही लिख सकी हूँ। आगे यह

कितना व्यापक होकर मुझे अपने परिचय से अवगत करायेगा यह तो मेरे बाबूजी ही जानते हैं।। समस्त के हित में समर्पित मेरी अन्य पुस्तकों के साथ यह पुस्तक भी मात्र परमानन्द के विषय में ही नही, बल्कि इसके बाद दिव्यानन्द, पुनः शून्यानन्द अर्थात् श्री बाबूजी के लेखन में लिखित 'ज़ीरो' (Zero) की अवस्था के पश्चात् अनन्य–अवस्था में पाई हुई दिव्य--अनुभूतियों की उपलब्धियों से सजाई हुई, उनके दैविक–तेज में डूबी हुई आज उनके ही दिव्य–चरणों में समर्पित है। मात्र इस प्रार्थना के साथ कि प्राणिमात्र इस दैविक तेज से तेजस्वी होकर अनन्त--यात्रा में अनन्य–गति को प्राप्त करें और सहज–मार्ग साधना द्वारा अपना वास्तविक परिचय प्राप्त कर सकें कि वे 'ईश्वर का अंश' हैं ।।

"सादगी की ओट से"

आज अचानक सादगी ही मुझसे पूछ बैठी, "आखिर मैं किसका नक़ाब (पर्दा) बन गई हूँ"? मैं तो चौंक कर सतर्क हो गई कि क्या Divine मुझे इस प्रश्न के माध्यम से इसकी सच्चाई को भी समस्त के प्रति उज्जवल करना चाहते हैं? मेरी लेखनी मेरी उँगलियों में फँसकर, नत–मस्तक हुई, मानो प्रतीक्षा में मगन थी कि आदि–प्रकृति कदाचित् उस भेद को भी खोल देना चाहती है कि "सादगी बाबूजी का नक़ाब बन गई थी"। लगता है सादगी को भी लोगों का यह कथन रास नहीं आया था– तभी तो खुद से ही बोल उठी कि "क्या असलियत पर कोई नक़ाब डाल सका है"? क्या असलियत कभी ओट में रह सकती है? लोगों की बुद्धि पर पड़ा आवरण सहज–मार्ग–साधना द्वारा जैसे–जैसे झीना पड़ता जाता है, वैसे ही वैसे असलियत की झलक, जो आज तक प्राणी–मात्र के आने की बाट जोह रही थी समक्ष में आने लगती है। इस सच्ची साधना अर्थात् सहज–मार्ग–साधना का योग श्री बाबूजी महाराज ने अभ्यासी के सत्य–पद तक पहुँचने के लिये आध्यात्मिक–उन्नति के हित सहज ही कर दिया है– कदाचित् तभी इस साधना को Nature ने 'सहज–मार्ग' नाम दिया है। तभी तो सादगी का प्रश्न मुझे अच्छा लगा कि "वह नक़ाब कैसे बन गई है"? अंतर्दृष्टि जब ईश्वरीय–प्रकाश से प्रकाशित हो जाती है तभी वास्तव में अपने बाबूजी की वास्तविक–छवि का दर्शन पाया जा सकता है। इस दशा को प्राप्त होते ही मुझे सादगी के प्रश्न का वास्तविक उत्तर मिल गया था "कि असलियत पर कोई नक़ाब नहीं होता है। वह तो उज्जवल थी, उज्जवल है और उज्जवल रहेगी।" आज मेरी लेखनी मानो अपने जीवन–सर्वस्व 'श्री बाबूजी' के दैविक–अक्षरों में ही सादगी के प्रश्न का उत्तर दे रही है कि "मनुष्य की वास्तविक–हस्ती पर्त दर पर्त में छुप गई है"। यही कारण है कि जब सहज–मार्ग–साधना के सिद्धि–पक्ष को लाँघती हुई मैंने अपने बाबूजी को पत्र में लिखा था कि "कितने भी कपड़े पहने रहने पर भी मुझे लगता है कि मैं नंगी की नंगी हूँ" लेकिन यह वाक्य मानो मेरी वास्तविक आत्मिक–दशा का द्योतक था क्योंकि श्री बाबूजी का उत्तर आया कि "क्या कहने हैं तुम्हारी हालत के। श्री लालाजी की कृपा ने तुम्हें self-realization की दशा का दर्शन प्रदान किया है। पर्त दर पर्त

में छुपी तुम्हारी हस्ती अब रौशन हो गई है।" अब बताइये कि जब मानव–हस्ती की वास्तविकता का ही उसे पता नहीं है तो फिर Reality तो खुद ही अपनी 'वास्तविकता' है उसे कौन समझ सकता है। बस अपनी हस्ती का नकाब (आवरण) हटते ही, हमारी आत्मिक–उन्नति, सहज ही सहज–गति से विभूषित होकर आध्यात्मिकता की Reality की दशा की ओर बढ़ चलती है। और एक दिन! श्री बाबूजी महाराज हमें Reality के दर्शन का सौभाग्य प्रदान करते हैं। बस इस दशा में लय–अवस्था प्राप्त करने पर ही मैंने यह सत्य उज्जवल हुआ पाया कि मैं अपने श्री बाबूजी में ही विलीन या लय होती जा रही हूँ। बस इसमें प्रवेश पाने पर ही मेरे गीत की यह लाइन स्वतः ही गुनगुना उठी थी कि "मापी जा सकती है सागर की गहनता भी कभी, पर न मापी जा सके 'इरा प्यार' की छलकन कभी"। तभी मेरी लेखनी ने मेरी पुस्तकों में "सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान पश्चात् 'अनन्त' के क्षेत्र की हर गहन दशा का भी ब्यौरा दे पाया है। वह भी अपने गीत में गुनगुनाती इन पंक्तियों में कि :

"जनक (पिता) लालाजी थे उनके, आदि–शक्ति माता उनकी,
सृजनहारा कौन था बस ये ही जाने मर्ज़ी उनकी,
कुतुबं (श्रेष्ठ–दशा यानि ईश्वरीय–देश में) पै चढ़के (पहुँचकर)
पुकारा, तब ये समझे कौन थे।"

प्रिय भाइयों, यह बात तो जग–जानी है कि जहाँ तीन धारायें मिलती हैं संसार में वहीं संगम माना जाता है। उसी प्रकार मैंने सहज–मार्ग में यह बात प्रत्यक्ष हुई पाई है कि साधना के तीनों अंग अर्थात् ध्यान, सफ़ाई एवं प्रार्थना के द्वारा पाई आध्यात्मिक–दशाओं की प्राप्ति के पश्चात्, सबका सार मिलकर जब एक हो जाता है, अर्थात् दशायें जब हममें absorb (लय) हो जाती हैं तभी ईश्वरीय सागर में हमारी लय–अवस्था प्रारम्भ हो जाती है। मैंने यह कहावत भी तभी प्रत्यक्ष होती पाई है कि "गहरे पानी में पैठने पर ही सच्चा मोती प्राप्त होता है।" अर्थात् दैविक–लय–अवस्था में डूबने पर विराट्–अवस्था में लय–अवस्था पाने पर 'साक्षात्कार' ही हमारे समक्ष में व्याप्त होता है। ध्यान की गहनता जब अपनी सीमा को छू लेती है तो लगता है कि मानो Divine द्वार पर हमारी मौजूदगी की दस्तक हो गई है। दूसरी बात यह

कि सफ़ाई के तरीके की असलियत जब अपनी सीमा को छू लेती है तभी मानो हमारे और ईश्वर के बीच का पर्दा या ओट समाप्त हो जाती है। प्रार्थना की पूर्णता तो तब मैंने पाई जब अहं का समर्पण ईश्वरीय मुख्य–केन्द्र की चौखट पर नत होकर सदा के लिये अपनी पहचान अथवा परिचय खो देता है। किन्तु भाई फिर भी अभी कुछ शेष हैं। जानते है क्या? कि कोई 'उन' तक हमारी ख़बर पहुँचा दे अर्थात् **"Super conscious mind"** को हमारा होश संभलाकर कह दे कि कोई तेरे द्वार पर आ गया है'' और मैंने पाया कि यह तो मेरे बाबूजी ही थे जो मुझे उस **Divine** द्वार तक ले गये थे। बस आगे कैसे होश सँभाल पायेगी मेरी लेखनी लेखन के लिये जब कि समक्ष का दिव्य–नज़ारा कुछ बोल रहा था। अरे यह क्या नज़ारा है जिसे नज़र नहीं बल्कि वह नज़ारा ही मुझे अपना परिचय लिखवा रहा है कि ईश्वरीय–केन्द्र के मुख्य–केन्द्र का पट खोलकर मानो मेरे बाबूजी कह रहे थे कि 'कोई उनका साक्षात्कार' पाने हेतु प्यासे की तरह उनके समक्ष खड़ा है। भला कौन चितेरा इस दैविक–दृश्य का चित्रांकन करके मानव के समक्ष इस दैविक–दर्शन की गहनता को प्रत्यक्ष कर पायेगा। किसका साहस है कि श्री बाबूजी महाराज के अपने अभ्यासी के प्रति इस असीम प्यार की छलकन का वर्णन भी कर सके।

अपने दिव्य एवं अनन्त–प्यार के साये में सहज–मार्ग–साधना पद्धति द्वारा ह्रदय से सटाये हुये मुझ अदना सी अभ्यासी बिटिया को सर्वप्रथम तो 'आत्म–साक्षात्कार' अर्थात् **Self Realization** की दैविक–दशा प्रदान की फिर 'ईश्वरीय–साक्षात्कार' में प्रवेश देकर, प्रथम–मानव के स्थापित होने के 'सत्य–पद' पर प्रतिष्ठित किया। फिर भूमा अर्थात् **Ultimate** के गौरव–गरिमा के वैभव–देश अर्थात् सेन्टर–रीजन में प्रवेश देकर पैराव देते हुये ले चले। इतना ही नहीं उनके अनन्य प्यार की अनन्तता तो देखिये कि वहाँ भी (सेन्टर रीजीन) मैंने पाया कि मानो कोई चैन नहीं लेने दे रहा है क्योंकि **swimming** में पाई हर हालत का दिव्य–परिचय खुद में विस्मृत हुई, उनके दैविक–संकल्प में सोई मानो मेरी **Identity** स्पन्दन देकर, पुनः पुनः जागृति देकर कुल अनुभूति का परिचय भर देना चाहती थी। कदाचित् कारण यही रहा होगा कि स्वयं **Divine** ही, मेरे बाबूजी महाराज की **Divine Personality** का परिचय समस्त के हित समक्ष में

उतारना चाहता था। यह Divine-will ही मेरी पुस्तकों के लेखन का आधार रही है। अंत में आया भूमा या Ultimate के अनन्त–पसारे का दर्शन, जिसमें हमें भूमा की चौखट में प्रवेश पाने के लिये प्रथम इसके सप्त–द्वारों में प्रवेश पाकर, इसमें व्याप्त आदि–शक्ति को अपनाते हुये ही बढ़ना होता है जो श्री बाबूजी महाराज की परम–कृपा एवं समस्त के प्रति दैविक–प्यार के द्वारा ही सम्भव हो पाया है। मैंने ऐसा ही पाया है। श्री बाबूजी ने अपनी महत्–पुस्तक "Efficacy of Raj Yoga" में 'सैविन रिंग्स' का नाम दिया है। भूमा की चौखट में प्रवेश पाते ही मैंने पाया कि इसका दर्शन कहूँ या दिव्य–परिचय समक्ष में आते ही मानो वह दर्शन सदा के लिये भूमा की अनन्तता में विलीन होकर अपनी जाति बता देता है। वह यह कि इसका आधार या परिचय अन्तिम–सत्य की अनन्तता में ही निहित है। अभी मैं यह नहीं बता सकती हूँ कि मेरे श्री बाबूजी द्वारा पकड़ाई हुई मेरी लेखनी का प्रवाह आप सबको कहाँ तक ले जायेगा?

प्रथम रिंग में प्रवेश देने के लिये वे द्वार पर ही 'महापार्षद' की श्रेष्ठतम–गति से मानो हमारा दैविक–श्रृंगार करते हैं। पुनः प्रथम रिंग में प्रवेश पाने पर मैंने पाया कि वहाँ न शक्ति की गम्य थी और न संकल्प का स्पर्श था। वहाँ की Reality अथवा वास्तविकता ने मुझे बताया कि यहाँ भूमा अर्थात् आदि–शक्ति का आकर्षण ही व्याप्त है, जो हमें सप्त–द्वार अथवा सात रिंग्स से गुजारता हुआ ले जाता है 'अपने देश'।

अरे! कैसा है यह दिव्य–आकर्षण जो वहाँ की अनन्तता से भी परे रहता हुआ 'श्री बाबूजी महाराज' द्वारा लिखित तम्–अवस्था को भी हमारे समक्ष प्रकाशित कर देता है। यह दिव्य–आकर्षण मानो भूमा के देश के कुल सौंदर्य का द्योतक है। मैंने पाया कि यह दिव्य किन्तु मौन आकर्षण ही अभ्यासी के हित अंतिम–सत्य की यथार्थता को प्रकट करता है। भूमा का यह दिव्य किन्तु सहज–आकर्षण दिव्य–विभूति हमारे श्री बाबूजी महाराज के यथार्थ–सौंदर्य का परिचय दे रहा था। कदाचित् अब भूमा का आदि–क्षेत्र भी आज अपने अनन्य किन्तु अपरिचित परिचय को पाकर मुस्कुरा उठा है। यह भी लगा कि यह सहज–दिव्य–आकर्षण उस दिव्य–विभूति की मुस्कान में भरकर कदाचित् अपनी पहचान अथवा परिचय को पा गया है। अल्टीमेट के दिव्य एवं अनन्त आकर्षण की

दिव्य–मुस्कान की किरणें, आज मानव–मात्र के उद्धार हित, दैविक–निमंत्रण के रूप में श्री बाबूजी के दैविक–संकल्प द्वारा धरा को पखारने लगी हैं। जानते हैं क्यों? जब भी जिस दैविक–क्षेत्र से अवतार धरा पर अवतरित होते हैं, उस दैविक–क्षेत्र की शक्ति एवं दैविक–आकर्षण भी उस Divine Beauty या दिव्य–विभूति द्वारा पृथ्वी पर व्याप्त हो जाता है जो मानव की आत्मा से सम्बन्धित होकर थिरक उठता है अंतर में दैविक–जागरण देने हेतु। आज मेरी लेखनी धन्य हो गई है आदि से लेकर अब तक अपरिचित भूमा के परिचय का प्रसाद मानव–मात्र के हित वितरण करके। आज यह प्रार्थी भी है कि "हे भूमा के अंश श्री बाबूजी आपकी दिव्य–विभूति का आकर्षण एवं शक्ति में डूबा हुआ आपका सहज–मार्ग समस्त को गले लगाकर अनन्त के दिव्य–परिचय का भी मात्र परिचय ही नहीं दे रहा है वरन् इसमें प्रवेश पाये जगत् को दैविक–उजियारा देकर आध्यात्मिक–सौंदर्य से रोशन भी कर रहा है। मैं देख रही हूँ कि मेरे लेखन को मेरे बाबूजी के 'आमीन' की मुहर भी मिल गई है तभी तो धन्य होकर मेरी यह लेखनी थिरकती हुई गुनगुना रही है कि "संध्या ये दिन सबके लिये आये"। प्रिय भाइयों आप यह भी तो जानना चाहते होंगे कि यह 'दिव्य–आकर्षण' क्या है? तो सुनिये घेरा या Halo तो मानव की पवित्रता का द्योतक होता है किन्तु यह दैविक–आकर्षण Divine-power का द्योतक है।

समय की गरिमा तो देखिये कि जो श्रेष्ठ दैविक–दर्शन (फ़िलांसफ़ी) अब तक पर्दे के ओट थी, वह अब स्पष्ट हो गया है। भूमा या अल्टीमेट के विषय में सुनकर मानों हमारी समझ अब तक पूछती ही रही थी, आज अपने श्री बाबूजी सी दिव्य–विभूति को पाकर मानो हमारी उस से पहचान हो गई है। श्री रामचन्द्र मिशन के अंतर्गत सहज–मार्ग–साधना पद्धति ने गहन से गहन दैविक–दशाओं के दिव्य–रहस्य को समस्त के हित प्रत्यक्षता प्रदान की है। इतना ही नहीं मानव–हृदयों को अपने दिव्य–संकल्प से योग देकर उन्होंने दैविक–शक्ति का भी योग देते हुये मानो सहज–मार्ग–साधना पद्धति की दैविक– फिलॉसफ़ी को 'स्पष्टता' प्रदान की है। इतना ही नहीं मैंने पाया है कि आध्यात्मिक–क्षेत्र की कुल यात्रा को अपनी दिव्य–Research की गरिमा से पूर्ण कर मानो समस्त के प्रति अपने दैविक–प्यार की गरिमा की मुस्कान को उजागर कर

दिया है। यह मुस्कान तो अलौकिक है जिसमें मेरी पुस्तक के पाँच खण्डों की अनन्त–यात्रा समाई हुई है। इतना ही नहीं यह भी मुझे लिखना नहीं भूलेगा कि आदि–शक्ति (Source) का दिव्याकर्षण भूमा के देश का यथार्थ है, जो 'अनन्त' के परिचय को भी मेरी लेखनी द्वारा उजागर कर पाया है। नहीं तो यहाँ सर्वत्र मौन एवं अंधेरा ही व्याप्त होता। मेरा लेखन इस सत्य को भी प्रकट करने में पीछे नहीं रहेगा कि इस तम् की अनन्य–गति के विषय में अथवा यों कहूँ कि Divine के इस रहस्य को जो अब तक तम–अवस्था की ओट था उसे भी समस्त के प्रति उजागर कर पाने की क्षमता श्री बाबूजी महाराज द्वारा ही संभव हो सकी है।

प्रिय पाठकगण, अब तो आप यह समझ गये होंगे कि ''सादगी की ओट'' वास्तव में, आध्यात्मिक–क्षेत्र में आदि से लेकर ''अनन्त'' तक की दिव्य–दशाओं के हित दैविक–रत्न–गर्भा है। 'सादगी की ओट' का कमाल तो देखिये कि स्वयं ओट में रहते हुये उसने भूमा के देश के समस्त दिव्य–रहस्यों को समस्त के हित प्रकट कर दिया है। और क्या सुनेंगे आप, सुनिये सादगी की ओट हमें क्या संदेश दे रही है? कि Ultimate के दिव्य–रहस्यों का उन्मूलन करने वाला तो मेरी ओट में है, किन्तु उसकी दिव्य–मुस्कान की छिटकन ही संसार को ईश्वरीय–प्रकाश से भर देने के लिये पर्याप्त है। फिर आगे? यही कि समर्थ सद्गुरु श्री लालाजी साहब का श्री बाबूजी महाराज के प्रति यह सत्य–कथन कि ''तुम संसार के मानव–हृदयों में ईश्वरत्व को उतार कर ईश्वर–मय तो बना दोगे किन्तु तुम अपना "Substitute" नहीं बना पाओगे। जानते हो क्यों? क्योंकि ''ईश्वर अपना दर्शन खुद नहीं पा सका है''। मेरे भाइयों बस यह मात्र इतना सा ही परिचय सादगी की ओट से आती हुई दैविक–मुस्कान का मिल सका है। यह लघु परिचय भी मैं उनकी ही 'जात' से, सादगी की ओट में रहकर ही पा सकी हूँ। भूमा ने तो अपना 'गोपाल' कहकर सादगी की ओट की ओर इशारा किया है। Ultimate ने अपना अंश कह कर उसे दुलार दिया है और आदि–शक्ति ने अपनी धरोहर मानव–मात्र के हित ''सादगी की ओट'' कर दी है। ज़माने ने 'उन्हें' समर्थ–सद्गुरु का लाल कहकर पुकारा है और उनके दैविक प्यार की छाँव में ही पलने लगा है।

समय की गरिमा तो देखिये कि इसने भी ज़माने को 'उनके' प्यार के आँचल में पलने को छोड़ दिया अथवा समर्पित कर दिया है। अब भला दैविक–आँचल उन्हें कहाँ ढाँक पाता, उसने शाहजहाँपुर (यू. पी.) में उन्हें हमारे 'बाबूजी' के रूप में हमें प्रदान कर दिया। सादगी की ओट ने जो घूँघट उठाया तो हमारे जीवन–सर्वस्व श्री बाबूजी महराज ईश्वरीय–प्रकाश से प्रकाशित, सहज–मार्ग रूपी दीप के दिव्य–प्रकाश से जग में उजियारा फैलाने लगे। बस इतना सा ही परिचय है सादगी की ओट से बहती ईश्वरीय–धारा के प्रवाह का जो समस्त के हित, सदैव के लिये प्रवाहित रहकर वसुन्धरा को पखारती हुई मानव–मात्र के हित अंतिम–सत्य के सहज–पथ को सँवारती रहेगी।

◆

प्रश्न अभ्यासी के, उत्तर श्री बाबू जी के

प्रश्न (1) ईश्वर कौन है?

उत्तर – जो स्वयं–भू है।

प्रश्न (2) क्या ईश्वर हमारे भीतर है?

उत्तर– ईश्वर प्रत्येक वस्तु के भीतर है किन्तु प्रश्न तो यह है कि क्या आप ईश्वर के भीतर हैं?

प्रश्न (3) ईश्वर की व्याख्या कैसे की जाये बाबू जी?

उत्तर – यदि संसार के सभी विशेषण हटा दिये जायें तो जो कुछ शेष रह जायेगा वह ईश्वर है। यदि आप क्रोध में ईश्वर के विरुद्ध भद्दी भाषा का प्रयोग करना चाहते हैं तो आप जितना चाहें कर लें, उसका कोई फल नहीं निकलेगा।

प्रश्न (4) ईश्वर ने इस संसार की उत्पत्ति क्यों की, जहाँ इतने दुःख एवं पीड़ायें हैं?

उत्तर – यदि लाखों वर्षों तक शक्ति अपने आप को प्रगट न करे तो वह स्थूल हो जाये; इसलिए अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए "उन्होंने" शक्ति को भेजा और परिणामतः यह संसार बना।

प्रश्न (5) ईश्वर बहुत निर्दयी है क्योंकि वह हमें पीड़ित होते देखता है और हमारी पीड़ाओं को दूर नहीं करता।

उत्तर – जब केन्द्र के मूल से शक्ति नीचे की ओर आई तो परिणाम 'सृष्टि' हुआ। जब इसने (शक्ति ने) केन्द्र को छोड़ दिया और उसके बाहर आई तो वस्तुओं का निर्माण प्रारम्भ हुआ। मन, जो हम अपने साथ लाये थे, हमें बुनने लगा और हम उस भौतिक रूप में आ गये जो हम इस समय हैं। यह हमारा अपना कार्य है कि हम मन का प्रयोग उचित ढंग से नहीं करते और इसलिए दुःख इसका परिणाम है। अतएव सभी क्लेश एवं पीड़ाओं के लिए हम स्वयं उत्तरदायी हैं।

जब शरीर में विष आ जाता है तो ज्वर हो ही जाता है। ऐसा

इसलिये होता है क्योंकि यथार्थ शक्ति जो हमारे भीतर कार्य कर रही है, अनिच्छित वस्तुओं को बाहर की ओर फेंकना चाहती है। यह सब मैं आपको बता तो रहा हूँ किन्तु मैं नहीं जानता कि ये कहाँ तक सही है। मैंने केवल उसी विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण की है जहाँ क, ख, ग, घ, ङ होता ही नहीं है।

प्रश्न (6) ईश्वरानुभूति का क्या अर्थ है?

उत्तर – आप क्या हैं, आप जानते हैं। किन्तु आप यह नहीं जानते कि ''वह'' क्या है? जब आप यह जान लेते हैं अथवा अपने में अनुभूति प्राप्त कर लेते हैं कि ''वह'' क्या है; यही ईश्वरानुभूति है।

प्रश्न (7) क्या भावनायें ईश्वरानुभूति में बाधा उत्पन्न करती हैं?

उत्तर – भावनायें कहाँ हैं? आपके घर में या और कहीं? मुझे तो भावना का अर्थ भी ज्ञात नहीं है, इसलिए मैं इसके बारे में क्या व्यक्त करूँ? अनुभूतियाँ यथार्थ हैं भावनाएं अवास्तविक।

प्रश्न (8) सत्यता क्या है?

उत्तर – सत्यता आधार रहित अवलम्ब है।

प्रश्न (9) परिपूर्णता क्या है?

उत्तर – जब सारी शक्तियाँ इतनी विकसित हो जायें कि निरन्तर सन्तुलन बना रहे।

प्रश्न (10) एक नवजात–शिशु क्या पूर्ण है?

उत्तर – वह सुप्तावस्था में है। अब आप इसे क्या कहेंगे? पूर्ण अथवा अपूर्ण?

प्रश्न (11) बाबूजी !क्या आप व्याख्या कर सकते हैं कि 'स्वत्व क्या है?' ऋषि लोग इससे क्या समझते हैं जब वे कहते हैं– ''स्वत्व''? क्या यह ईश्वर है?

उत्तर – यह ईश्वर नहीं है। यह ईश्वर से भिन्न है। व्यक्तिगत का भाव ही 'स्वत्व' है। यह अहंकार का परिणाम है।

प्रश्न (12) परिपक्व विचार क्या है?

उत्तर – एक लक्ष्य, एक गुरु, एक विधि का रखना।

प्रश्न (13) मस्तिष्क में विचार किस प्रकार उत्पन्न होते हैं?

उत्तर – यदि मस्तिष्क में कोई विचार न हो तो इसका अर्थ है कि हम पूर्ण संतुलन की स्थिति में आ गये हैं और तत्काल छिन्न–भिन्न हो जायेगा।

प्रश्न (14) विचार किस प्रकार उत्पन्न होते हैं?

उत्तर – हमारा मानस वृहत्–मानस से आया है और इसलिए यह कितना भी भ्रष्ट क्यों न हो गया हो, पवित्रता इसमें सदा रहती ही है। चूँकि इस पवित्रता का सम्बन्ध दिव्य मन से होता है, यह अपने ऊपर अपवित्रता स्वीकार करने की इच्छा नहीं रखती। इस प्रकार अपवित्रता लगातार बाहर की ओर निष्कासित होती रहती है और यही बाहर की ओर निष्कासित अपवित्रता विचार का रूप धारणा कर लेती है जो हमें अनुभव होता रहता है।

प्रश्न (15) विचार एवं अन्तर्ज्ञान में क्या अन्तर है?

उत्तर – कल्पना की उन्नत स्थिति विचार है और विचार जब अपनी सीमा पार कर लेता है तो अन्तर्ज्ञान बन जाता है।

प्रश्न (16) जब हम विचार शून्य अवस्था में होते हैं तो क्या चेतना रहती है?

उत्तर – हाँ, यह लगभग एक पशु की अवस्था होती है, यह प्रवृत्ति का केवल प्रति उत्तर होता है। मैं आपको बता रहा हूँ, पूर्णतयः विचार शून्यता में होना सम्भव नहीं है; तब जीवन नहीं रहेगा। आवश्यकता है, अपने विचारों की प्रकृति में परिवर्तन लाना।

एक बार एक व्यक्ति मेरे पास आये और हमसे बोले कि उन्हें विचार शून्य कर दूँ। मैं विनोद में सहमत हो गया किन्तु मैंने कहा कि मैं एक शर्त में ऐसा करुँगा। यदि वे मुझे विचार पूर्ण स्थिति में कर दें तो मैं उन्हें विचार शून्य अवस्था में कर दूँगा।

प्रश्न (17) क्या ईश्वर के निकट होने के लिए पीड़ा का होना आवश्यक है?

उत्तर – यह आवश्यक नहीं है। यह केवल मेरे लिए है। मेरे गुरु तीव्र पीड़ा से ग्रसित रहा करते थे। उनके जिगर में पीड़ा थी और उन्हें अत्यधिक कष्ट रहता था। किन्तु जब वे तीव्र व्यथा में होते थे तो वे गीत गाया करते थे। मैंने पूछा ऐसा क्यों है? उन्हेंने मुझसे कहा कि जब कोई व्यक्ति तीव्र पीड़ा में होता है तो उसे कराहना ही पड़ता है अथवा इसी प्रकार की कोई ध्वनि उसके मुख से निकलती है तो क्यों नहीं गीत गाकर कोलाहल करें। एक बार उन्होंने मुझसे यह भी कहा कि वे इस पीड़ा को एक मिनट में आसानी से दूर कर सकते हैं। किन्तु उन्होंने ऐसा किया नहीं क्योंकि उन्होंने अनुभव किया कि यह पीड़ा ईश्वर द्वारा प्रदान की गई है। कौन जानता है कि ईश्वर ने इसे क्यों दिया है? उन्होंने अनुभव किया कि इसमें कुछ कारण अवश्य है। ऐसा था मेरे गुरु की दैवी इच्छा के प्रति समर्पण।

प्रश्न (18) धर्म क्या है?

उत्तर – कुछ सिद्धान्तों का एक स्थान पर संग्रहीत होना धर्म है।

प्रश्न (19) धर्म एवं अध्यात्म में क्या अन्तर है?

उत्तर – दर्शन वाह्य–जगत में प्रसन्नता प्रदान करता है, किन्तु मैं अन्तर में प्रसन्नता प्रदान करता हूँ। दर्शन के सम्बन्ध में वार्तालाप करने पर भी मैं वाह्य–प्रसन्नता ही प्रदान करता हूँ ; इसलिए आप समझें कि मैं वाह्य एवं अन्तर की दोनों प्रसन्नतायें देता हूँ।

प्रश्न (20) राजयोग क्या है? और सहजमार्ग?

उत्तर – यह ईश्वरानुभूति की एक प्राचीन पद्धति है।

प्रश्न (21) आपका सन्देश क्या है?

उत्तर – सर्वत्र शान्ति एवं विचारों में विरोधाभास का अभाव।

प्रश्न (22) यह कैसे प्राप्त किया जा सकता है?

उत्तर – प्राणाहुति एवं प्रार्थना के द्वारा।

प्रश्न (23) आपने कहा है कि सहज–मार्ग राजयोग की पुनर्निरूपति पद्धति है। यह राजयोग से भिन्न कैसे है?

उत्तर – यह भिन्न नहीं है। यह एक पद्धति है जो मेरे गुरु के अनुभवों पर आधारित है। कहावत के अनुसार "नयी बोतल में पुरानी मदिरा"।

प्रश्न (24) क्या गृहस्थ–जीवन में किसी भी व्यक्ति द्वारा यह किया जा सकता है?

उत्तर – हाँ! यह सामान्यतः गृहस्थों के लिए है। अन्य लोग भी अभ्यास द्वारा इससे लाभ उठा सकते हैं। मेरे गुरु ने गृहस्थ–जीवन को नकारा नहीं।

प्रश्न (25) यह पद्धति जिसकी आप शिक्षा दे रहे हैं, भौतिक संसार से सन्यास ही तो है? क्या ऐसा नहीं है?

उत्तर – नहीं। ठीक इसके विपरीत आपको सन्यासी होना पड़ता। आप गृहस्थ–जीवन में रहते हुये अपने यथाक्रम व्यापार का अनुसरण करते हुये सामान्य जीवन व्यतीत करते हुये, इसे अपना सकते हैं।

प्रश्न (26) ध्यान के लिए कितने समय की आवश्यकता है?

उत्तर – आप बीस मिनट से प्रारम्भ कर सकते हैं और एक घंटा तक ले जा सकते हैं।

प्रश्न (27) आपके यहाँ कोई चमत्कार होते हैं?

उत्तर – यह कोई आवश्यक नहीं कि चमत्कार हों। राजयोग के अनुसार शीघ्र ही चमत्कार होने लगते हैं, किन्तु हमें इसके लिए चेष्टा नहीं करनी चाहिए। चमत्कार मानवता के किसी प्रयोग की वस्तु नहीं है, वह एक भिन्न वस्तु है। जो चमत्कार का प्रदर्शन करते हैं उन्हें ख्याति अवश्य प्राप्त होती है।

प्रश्न (28) मंत्रों की क्या शक्ति है?

उत्तर – सहज–मार्ग में हम मन्त्र–जाप का समर्थन नहीं करते। कहा

जाता है कि मंत्रों में शक्ति है क्योंकि अनेकों लोगों ने इसकी शिक्षा दी है। किन्तु, मेरे स्वयं के विचार से मात्र ध्यान ही यथार्थ लक्ष्य, वास्तविक–गन्तव्य तक पहुँचा सकता है। मंत्र–योग के प्रयोग की सही विधि है कि मंत्र के अर्थ पर ध्यान किया जाये। वैदिक–सूत्र यही कहते हैं अन्यथा इससे कोई लाभ नहीं। यदि आप किसी मंत्र का, बिना उसके भाव पर ध्यान रखते हुये, केवल उच्चारण कर रहे हैं तो इसका अधिक प्रभाव नहीं पड़ता। मंत्र के सम्बन्ध में आपको श्री पातंजलि के सूत्रों को पढ़ना चाहिए। उन्होंने साफ–साफ कहा है कि यदि किसी मंत्र का जाप करना है तो केवल उसके अर्थ के भावों का मनन करना चाहिए।

प्रश्न (29) मैं एक अन्य गुरु का अनुसरण कर रहा हूँ और उन्होंने मुझे एक मंत्र दिया है। क्या मैं उसका अनुसरण कर सकता हूँ और आपकी पद्धति भी अपना सकता हूँ?

उत्तर – मुझे आपको सहज–रूप में बता देना है कि कहीं भी ले जाने के लिए दो साधन नहीं हो सकते। एक साधन दूसरे में विरोध उत्पन्न कर सकता है। कुछ समय के लिए आप एक को स्थगित कर अन्य का अनुसरण कर निश्चित कर सकते हैं कि आप किसका अनुसरण करना चाहते हैं। मैं नहीं समझ पाता कि लोग गुरु परिवर्तित करने में क्यों झिझकते हैं। अपनी आध्यात्मिक–उन्नति के लिए गुरु की शरण ली जाती है। जो आप चाहते हैं, यदि वह वे नहीं दे सकते, तो आपको अन्य व्यक्ति की शरण में जाना चाहिए। निसन्देह उनके प्रति आपकी श्रद्धा होनी चाहिये किन्तु आपको उन्हें बता देना चाहिये कि जो आप चाहते हैं वह वे नहीं दे सकते इसलिये आप अन्य व्यक्ति के पास जा रहे हैं।

प्रश्न (30) आपने कहा है कि प्राणाहुति सहज–मार्ग का एक विशेष अंग है। वस्तुतः यह क्या है और कैसे कार्य करता है?

उत्तर – यह एक दैवी–शक्ति है जिसका प्रयोग मनुष्य के रूपान्तरण के लिए होता है। रूपान्तरण प्राणाहुति का प्रतिफल है।

प्रश्न (31) आप मिशन में अधिक संख्या में सदस्य क्यों चाहते हैं? यदि छः या सात व्यक्ति हों तो क्या यह पर्याप्त नहीं है?

उत्तर – देखिये, मैं अनन्त से आया हूँ और अनन्त का बीज मेरे भीतर है। और जो कुछ मैं करता हूँ, उसमें मैं प्राकृतिक रूप में चाहूँगा कि अनन्त मेरे साथ रहे और सभी लोगों के लिए मैं चाहता हूँ कि उनके साथ अनन्त रहे। एक चोर भी चाहता है कि उसके साथ बहुत से लोग रहें। यह उसी अनन्त का प्रभाव है किन्तु एक अनुचित दिशा में। मैं आपको एक बात और बताता हूँ– हमें ईश्वर की आंशिक–शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए अपितु उसकी सम्पूर्ण शक्ति का प्रयोग करना चाहिए। किन्तु जब "मैं" का प्राबल्य होता है तब वह पूर्ण शक्ति नहीं आती। इसलिए "मैं' को छोड़े, शक्ति आ जायेगी। किन्तु उस शक्ति का प्रयोग नियन्त्रित होना चाहिए। व्यक्ति को इस दिशा में अत्यधिक सतर्क रहना चाहिए।

प्रश्न (32) बाबू जी! आप इतने समय से हम लोगों पर कार्य कर रहे हैं और हम भी आपको यथाशक्ति देने की कोशिश कर रहे हैं। क्या कोई ऐसा मार्ग नहीं कि आपके तथा हमारे इस कार्य सम्बन्धी श्रम की बचत हो जाये?

उत्तर – इस सम्बन्ध में लाला जी ने कहा है, "जितने समय में एक अश्रुकण नेत्र से बाहर आता है, मात्र उतने समय में परिपूर्णता प्रदान की जा सकती है किन्तु पूरा नाड़ी–तंत्र टुकड़े–टुकड़े हो कर बिखर जायेगा।"

यदि कुछ मैं तुरन्त करा दूँ और वस्तुतः ऐसा किया भी जा सकता है, तो व्यक्ति कुछ भी अनुभव नहीं कर पायेगा और फलतः वह प्राप्त निधि का मूल्यांकन नहीं कर पायेगा।

प्रश्न (33) बाबू जी! आपने 'सत्य का उदय' अनेकों वर्ष पूर्व लिखा है। यही बात आपकी अन्य पुस्तकों के लिए भी लागू है जैसे "राज योग का दिव्य दर्शन तथा 'दस उसूलों की सरह!' क्या आप कभी इनका संशोधन करेंगे? कदाचित् इन पुस्तकों में आपके द्वारा उठाये गये कुछ सूत्र अब प्रभावी न हों?

उत्तर – मैं आपको बताऊँ वे पुस्तकें केवल आज के लिए या एक वर्ष अथवा सौ वर्षों के लिए नहीं लिखी गई हैं। उनमें जो कुछ लिखा गया है, सदा के लिए है। वे भविष्य के लिए हैं। इसलिए यद्यपि वे सरल हैं, अनेक लोग उन्हें समझने मे अत्यधिक कठिनाई पाते हैं।

प्रश्न (34) यह कैसे हो सकता है बाबू जी? यदि से सरल हैं तो उन्हें समझना सहज होना चाहिये?

उत्तर – मैं आपको वेदों का उदाहरण देता हूँ। मेरा विचार है कि जब प्राचीन काल में ऋषियों द्वारा वे लिखे गये, उस समय कुछ ही लोग उसे समझ सकते रहे होंगे। आज उनके अर्थ समझना कितना सहज हो गया है। वही बात सहज–मार्ग शिक्षा के लिए है। ये नीतियाँ भविष्य के लिए हैं। भविष्य में लोग उन्हें सहजता से समझ लेंगे।

प्रश्न (35) मैं सब कुछ जान लेना चाहता हूँ। यह कैसे हो?

उत्तर – फारसी में एक द्विपदी है जिसमें एक सन्त का कथन है कि –"मैंने जो कुछ जाना है वह यह है कि मैंने कुछ नहीं जाना।"

प्रश्न (36) आपने हृदय पर ध्यान बताया है। क्या हम अपनी पसन्द की किसी अन्य वस्तु पर ध्यान नहीं कर सकते? मैं सागर पर ध्यान करना श्रेष्ठतम समझता हूँ। मेरे लिए यह अनन्त का यथार्थ भाव उत्पन्न करता है।

उत्तर – भाई। इसका निश्चय आप स्वयं करें। मेरे गुरु द्वारा विकसित पद्धति में हम हृदय में प्रकाश पर ध्यान करते हैं। मेरा विचार है कि यदि आप किसी पदार्थ पर ध्यान करते हैं तो प्रतिफल में आपको उसका तत्व प्राप्त होना ही चाहिए। इसलिए यदि आप सागर पर ध्यान करते हैं तो आपको लवण की प्राप्ति होगी।

प्रश्न (37) यदि एक अभ्यासी अनेकानेक वर्षों से ध्यान करता चला आ रहा हो तो क्या साधना सरल हो जाती है या विचार फिर भी आते रहते हैं?

उत्तर – विचारों की तीव्रता घट जाती है, किन्तु एक दिन में नहीं। ध्यान का समय बढ़ायें और एक घंटा तक ले जायें। तब परिणाम देखें।

प्रश्न (38) यह बहुत कठिन है।

उत्तर – केवल इसलिए कि आप कर नहीं रहे हैं। मैं सरलता से कर सकता हूँ। यदि मैं कर सकता हूँ तो आप भी कर सकते हैं।

प्रश्न (39) प्रकाश के बारे में क्या कहना है? क्या हमें प्रकाश देखना चाहिए?

उत्तर – मैं आपको बताऊँ। यह केवल कल्पना है कि हृदय में प्रकाश है। यह एक प्रस्ताव है। मैंने कहीं लिखा है कि प्रारम्भिक स्थिति में न तो प्रकाश होता है और न अंधकार। यह प्रभात के रंग सा होता है। नारदीय सूक्त भी यही कहता है।

प्रश्न (40) ध्यान निश्चेष्ट होता है। आप कुछ भी नहीं करते। यह परिणाम कैसे दे सकता है?

उत्तर – हम यह समझते हुये हृदय पर ध्यान करते हैं कि वहाँ ईश्वरीय प्रकाश है। आप जानते हैं कि आप ध्यान कर रहे हैं, इसका अर्थ यह हुआ कि आप कुछ कर रहे हैं और वह स्थान जहाँ आप कुछ कर रहे हैं, हृदय भी वहाँ है। और आपको अपने लक्ष्य तक पहुँचना है, यह विचार भी विद्यमान है और आप अर्द्धचेतन रूप में वहाँ किसी वस्तु की प्रतीक्षा भी करते हैं। इसका अर्थ हुआ आप जड़ नहीं हैं बल्कि इतने व्यस्त हैं कि आप एक ही समय में काम कर रहे हैं। इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप में दिखती निष्क्रियता कार्यशीलता में समाहित हो जाती है।

प्रश्न (41) क्या आध्यात्मिक उन्नति के लिए उत्पीड़न आवश्यक है?

उत्तर – नहीं। मैं आपको एक बात बता रहा हूँ। भारत में ऐसे अनेक संत हुये हैं जिन्होंने ईश्वर के समक्ष इस निवेदन के साथ अपने को उपस्थित किया कि विश्व की सारी पीड़ायें उन्हें प्रदान कर दी जायें। मुझे ऐसा कहने के लिए क्षमा करें किन्तु आप अपनी तुलना उनसे कर लें।

प्रश्न (42) क्या सतत् स्मरण स्वतः विकसित होता है अथवा किसी व्यक्ति को इसके लिए साधना करनी पड़ती है?

उत्तर – यदि प्रेम की बाहुल्यता है तो इसका विकास स्वतः हो सकता है।

प्रश्न (43) सतत्–स्मरण का विकास किस प्रकार किया जाये? क्या कोई मार्ग है?

उत्तर – हमें एक ही विचार पर चिन्तन करना चाहिये, केवल एक विचार पर बारम्बार हृदय में भाव का होना अनिवार्य है। इसे मन्त्र की तरह दोहराना नहीं चाहिये।

प्रश्न (44) क्या विकास के लिए समाधि आवश्यक है?

उत्तर – प्रत्येक व्यक्ति समाधि के लिए लालायित है किन्तु विकास के लिए यह बिल्कुल आवश्यक नहीं है। मेरे कहने का तात्पर्य आध्यात्मिक विकास से है। मैं सदा किसी आधार पर ही कुछ कहता हूँ।

प्रश्न (45) क्या आप समाधि के बारे में कुछ बतायेंगे? यह क्या है?

उत्तर – परम्परागत योग में 'समाधि' योग की अन्तिम अवस्था कही गई है। यदि वह स्वतः आ जाये तो बुरा नहीं है। किन्तु उसमें दैवी–चेतना होना आवश्यक है और उसकी सहायता से आपको अग्रसर होना चाहिए। यदि दैवी–चेतना नहीं है तो यह कुछ नहीं। जब ध्यान 'बस करने' को कहा जाता है तो इसी दैवी–चेतना के कारण आप तुरन्त जान जाते हैं। यदि यह परम्परागत वाली दूसरे प्रकार की समाधि होती, तो आपको बलपूर्वक जगाना पड़ता।

प्रश्न (46) श्रद्धा कैसे प्राप्त की जाये या स्वयं में कैसे विकसित की जाये?

उत्तर – हमें जो करना है वह है किसी पर विश्वास करना और आरम्भ करना और तब जब आप अपने को प्रगति पर देखते हैं तो श्रद्धा स्वयमेव उत्पन्न होगी। लोग अन्तःकरण के बारे में बहुत बातें करते हैं। अन्तःकरण से हमें मार्ग दर्शन

मिलना चाहिए किन्तु हम अपनी इच्छानुसार अन्तःकरण को मार्ग दर्शाते हैं। अन्तःकरण क्या है? वास्तव में इसके चार स्तर हैं – मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। जहाँ ये सभी संतुलित हों और एक मूल विचार में समाविष्ट हों वहीं वास्तविक अन्तःकरण है।

प्रश्न (47) श्रद्धा को क्या कहा जाये? यह एक वरदान है या इच्छा–शक्ति का कार्य?

उत्तर – दोनों सही हैं।

प्रश्न (48) जब आप लक्ष्य तक पहुँचने की बात कहते हैं तब आप कहते हैं कि श्रद्धा एवं दृढ़ संकल्प आवश्यक हैं। आप यह भी कहते हैं कि समर्पण आवश्यक है। अब दृढ़ संकल्प और समर्पण, इन दोनों में कौन पहले आता है? क्या वे एक दूसरे के बाद आते हैं अथवा दोनों साथ–साथ आते हैं?

उत्तर – लक्ष्य तक पहुँचने के लिए तो समर्पण आवश्यक है किन्तु संकल्प को पहले आना है। मेरे विचार से सच तो यह है कि ये एक ही तत्व हैं किन्तु भिन्न रंग के हैं।

प्रश्न (49) प्रेम के बारे में आपका क्या कहना है? क्या यह आवश्यक है?

उत्तर – प्रेम अत्यधिक आवश्यक है। गुरु के प्रति अथवा ईश्वर के प्रति प्रेम का होना अनिवार्य आवश्यकता है किन्तु अध्यात्मिक प्रगति में एक स्तर आता है जब प्रेम को भी विलीन हो जाना चाहिए। भाव यह है कि प्रेम जब एक निश्चित स्तर पर पहुँच जाता है तो अभ्यासी को यह अनुभव नहीं होता कि वह किससे प्रेम करता है? या कौन प्रेम करता है ऐसी स्थिति के लिए ही यह कहा जाता है कि अन्ततः प्रेम भी विलीन हो जाता है।

प्रश्न (50) समर्पण क्या है?

उत्तर – "मैं" की अनुपस्थिति समर्पण है। प्रथम वस्तु है ईश्वर के प्रति भक्ति, द्वितीय सदा अवलम्बित अनुभव करना। मान लीजिए आप ईश्वर को समर्पित हो चुके तो यदि समर्पण यथार्थ है तो सम्पूर्ण मानवता के प्रति समर्पण होगा।

प्रश्न (51) प्राणाहुति क्या है? यह शक्ति जो संप्रेषित होती है क्या स्थूल है?

उत्तर – मनुष्य का रूपान्तरण करने में दैवी–शक्ति का उपयोग प्राणाहुति है। यह कोई स्थूल ऊर्जा नहीं है। यह अनन्त की ऊर्जा है जो न स्थूल है, न रसायनिक।

प्रश्न (52) प्राणाहुति अभ्यासी पर कैसे कार्य करती है? क्या आप इसकी थोड़ी व्याख्या कर सकते हैं?

उत्तर – यह दैवी–शक्ति को खींच कर अभ्यासी में ले आती है और तब यह क्रियाशील होती है। जब यह दैवी–शक्ति आप में आने लगती है तब यह कार्य करने लगती है। यह अभ्यासी को सन्तुलित मनःस्थिति में ले आती है। असन्तुलित प्रकृति लुप्त हो जाती है। ये प्राणाहुति का प्रभाव है।

प्रश्न (53) क्या इसका अनुभव किया जा सकता है?

उत्तर – हाँ! यदि हम संवेदनशील हैं तो अनुभव कर सकते हैं और मान लें आप अनुभव नहीं करते तो जो परिवर्तन होता है वह आपको प्राणाहुति के प्रभावों का विश्वास दिला देगा।

प्रश्न (54) बाबू जी! सफाई की प्रक्रिया के लिए सर्वाधिक उपयुक्त समय कौन सा है?

उत्तर – जिस समय पूरे दिन का कार्य समाप्त हो जाये, सफाई के लिए वही उपयुक्त समय है।

प्रश्न (55) अहंकार क्या है?

उत्तर – अहंकार कोई बुरी वस्तु नहीं है। सत्य कहा जाये तो यह एक सूचक है। यह किसी वस्तु का संकेत देता है। यह मेज है और मैं इसे ऊपर उठा सकता हूँ क्योंकि मेरे भीतर विद्यमान अहंकार की शक्ति मुझे संकेत देती है कि मैं इसे उठा सकता हूँ। इसलिए आप देखें कि अहंकार बुरा नहीं है। किन्तु गलती यह होती है कि अन्तरात्मा के इस ज्ञान को कि मैं टेबुल उठा सकता हूँ, हम इस शरीर से सम्बद्ध कर देते हैं। जो स्व को अपना ज्ञान है हम उसका श्रेय शरीर को दे देते हैं। अहंकार

तो वास्तव में स्व की शक्ति पहचानने का एक अनुसंधान–सूत्र है। मैं तो 'स्व' के सम्पूर्ण विनाश के विपक्ष में हूँ क्योंकि यदि इसका नाश कर दिया जाता है तो हम कोई कार्य नहीं कर सकते। कम से कम भारत में सभी संतों ने कहा है कि 'स्व' का सम्पूर्ण विनाश आवश्यक है किन्तु मैं इसके विपक्ष में हूँ।

प्रश्न (56) कृपया अहंकार पर थोड़ा प्रकाश और डालें?

उत्तर – अहंकार? मैं तुमको बताता हूँ कि यह क्या है। मनुष्य ईश्वर का कार्य ले लेता है और अपना कार्य ईश्वर पर थोप देता है; यह वास्तविक कठिनाई है। हमें अपना कार्य करना चाहिए और ईश्वर को अपने ढंग से अपना कार्य करने देना चाहिये।

प्रश्न (57) दुष्टता क्या है और दूषित मार्ग कौन से हैं?

उत्तर – अप्राकृतिक कार्यों को करना ही दुष्टता है। जो कार्य मनुष्य को आध्यात्मिक तथा भौतिक रूप में पुष्ट करते हैं अच्छे हैं और जो मनुष्य को मानसिक एवं भौतिक रूप से दुर्बल बनाते हैं, बुरे हैं।

प्रश्न (58) स्वार्थपरता की यथार्थ व्याख्या आप किस प्रकार करेंगे?

उत्तर – यदि आपका हृदय आपके प्रति किये गये किसी की सेवा का आभार नहीं मानता तो वह स्वार्थपरता है।

प्रश्न (59) बाबू जी! भय की प्रकृति के बारे में आप क्या कहते हैं? क्या आपके विचार से मतिभ्रम माया है?

उत्तर – भय बुद्धिमत्ता का मतिभ्रम है। यदि बुद्धि सही है तो कोई भय नहीं हो सकता। मतिभ्रम माया नहीं है। सामान्यतः यह कहा जाता है कि माया एक छल है किन्तु मैं इससे सहमत नहीं हूँ। मैं समझता हूँ कि माया ईश्वर की शक्ति है। जब हम नहीं जान पाते कि यह शक्ति किस प्रकार कार्य कर रही है तो हम घबड़ा जाते हैं और इसे माया के नाम से पुकारने लगते हैं। किन्तु जब हमें ज्ञान हो जाता है कि ईश्वरीय–शक्ति किस प्रकार कार्य करती है तब हमें यथार्थ की परख होती है। अतएव सच कहा जाये तो यह हमारा स्वयं का अज्ञान है।

बुद्धिजीवी ज्ञान उधार लेते हैं और देव पुरुष ज्ञान का निर्माण करते हैं।

प्रश्न (60) प्राचीन युगों में अवतारों द्वारा किये गये कार्य की कृपया व्याख्या करें।

उत्तर – श्री रामचन्द्र ने, मेरा अभिप्राय अवतार से है, समाज के लिए आचार संहिता तथा शिष्टाचार का निर्माण किया। श्री कृष्ण ने उसी नींव पर भवन की रचना की और साधना में भक्ति का समावेश किया। श्री कृष्ण के पूर्व इस भक्ति तत्व का अभाव था। इस प्रकार प्रत्येक अवतार अपने से पूर्व के अवतार के कार्य में रचनात्मक योग देता है। यही नियम है। इसलिए, एक प्रकार से, बाद में आने वाला प्रत्येक अवतार अपने से पूर्व में आये अवतार से महान समझा जा सकता है। इसी विचार से सामान्यतः श्री कृष्ण, श्री रामचन्द्र जी से महान समझे जाते हैं परन्तु महानता अथवा लघुता के ये विचार अनुचित हैं। प्रत्येक अवतार का प्रादुर्भाव समय की आवश्यकता की पूर्ति के लिए एक विशिष्ट समय होता है इसलिए कोई किसी से महान अथवा लघु कैसे हो सकता है। केवल प्रयोजन ही महान अथवा लघु हो सकता है अवतार नहीं।

प्रश्न (61) क्या आप गुरु हैं?

उत्तर – नहीं, मैं अपने बारे में यही समझता हूँ कि मैं अपने सहयोगियों के बीच एक सहयोगी हूँ। अन्तिम गुरु अथवा स्वामी केवल ईश्वर ही है। अन्य लोग सभी उसके मार्ग–दर्शन एवं निर्देशन में कार्य कर रहे हैं। सच कहा जाये तो यदि कोई कहता है कि 'वह गुरु है' तो वह आध्यात्मिकता में अन्य लोगों को प्रशिक्षण देने के योग्य नहीं है। ऐसा व्यक्ति ईश्वर की पदवी का अपहरण कर रहा होता है।

प्रश्न (62) यह कहा जाता है कि हमें ऐसा समझना चाहिये कि यह शरीर मेरा नहीं है बल्कि गुरु का शरीर है और मेरे सारे कर्म और वह सब कुछ जो मैं करता हूँ, गुरु के काम–काज हैं। क्या यह मूलतः सही है?

उत्तर – मैं इसकी सलाह नहीं देता। यह उन अतीव समर्पित व्यक्तियों के लिए है जो स्वयं ही तकनीकी रीतियों को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं और उसे सम्बन्धित करते हैं। यह नवसिखुओं के लिए नहीं है। इसमें बल नहीं लगाना चाहिए। इसे सहज आना चाहिये अन्यथा यह भी मूर्तिपूजा की तरह ही हो जाता है।

प्रश्न (63) विश्व की व्याख्या आप किस प्रकार करेंगे?

उत्तर – मैं कह सकता हूँ कि विश्व सत्यता की अतिशयोक्ति है।

प्रश्न (64) विश्व–प्रेम की प्राप्ति कैसे की जा सकती है?

उत्तर – सत्य बात तो यह है कि सम्पूर्ण प्रेम ईश्वर को स्थानान्तरित कर देना है। एक का स्मरण सम्पूर्ण का स्मरण लाता है। यदि मैं आपसे प्रेम करता हूँ तो आपके बच्चों से भी प्रेम करता हूँ। एक संस्था है जो विगत चालीस वर्षों से विश्व–प्रेम की शिक्षा दे रही है किन्तु सफलता नहीं मिली। क्यों? इसका कारण घृणा है, हृदय में घृणा की उपस्थिति। घृणा को दूर कर दें तो प्रेम स्वतः विकसित होगा, इसलिए आप इस पर कार्य न करें, बल्कि इसके मूल पर कार्य करें।

प्रश्न (65) मानव–जीवन का तथा मानव–अस्तित्व का क्या उद्देश्य है?

उत्तर – उद्देश्य है मात्र ईश्वरानुभूति अथवा अपने स्व का, आत्मा का ज्ञान जो दैवी है।

प्रश्न (66) जीवन क्या है? स्वतन्त्रता एवं स्वतंत्र होना शब्दों के क्या अर्थ हैं?

उत्तर – जीवन की अनेकों परिभाषायें हैं। किन्तु मैं आपको अपनी परिभाषा बतलाता हूँ। जीवन में जीवन ही वास्तविक जीवन है। जब आप स्वतंत्रता से भी स्वतन्त्र हों तभी यथार्थ स्वतन्त्रता होती है।

प्रश्न (67) आप कह रहे हैं स्वतन्त्रता से भी स्वतन्त्र?

उत्तर – हाँ वही वास्तविक मोक्ष है जब आप मोक्ष से भी मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

प्रश्न (68) मनुष्य के सदाचार क्या हैं?

उत्तर – उच्च स्तरीय विचारों का चिन्तन यही मनुष्य का सदाचार है। जब आप इसका विचार करेंगे तो आप इसे प्राप्त भी करेंगे। इसके लिए प्रयास करें। मैं समझता हूँ कि दस वर्षों के भीतर सभी राष्ट्रों की सभ्यता संशोधित हो जानी चाहिये।

क्या आप मुझे बता सकते हैं कि मनुष्य की सबसे बड़ी मूर्खता क्या है? मैं आपको बताता हूँ। हम सदा विगत के बारे में सोचते हैं किन्तु भविष्य के निर्माण को भूल जाते हैं। यही हमारी सबसे बड़ी मूर्खता है।

प्रश्न (69) क्या संकल्प एवं इच्छा भिन्न है?

उत्तर – इच्छा अपने स्थान पर बुरी है किन्तु यदि इसे उचित मोड़ दे दिया जाये तो यह अच्छी है। हम इच्छा का प्रयोग अनुचित ढंग से करते हैं। संकल्प इच्छा के लक्ष्य को प्राप्त करने की प्रक्रिया है।

प्रश्न (70) बाबू जी! विद्वता, वास्तविक लक्ष्य तथा सन्यास के प्रति आपके क्या विचार हैं?

उत्तर – ईश्वरीय–शक्ति का उचित उपयोग ही विद्वता है। ईश्वर को प्राप्त करना ही वास्तविक लक्ष्य है। यदि सच पूछा जाये तो सन्यास आवश्यक नहीं है क्योंकि जब कोई सन्यास ले कर वन में जाता है तो प्रायः अपने परिवार, अपने बच्चे आदि के बारे में ही सोचते रहते हैं। अतः हमें गृहस्थी के बीच ही रहना चाहिये मगर घटनाओं से निर्लिप्त तथा आसक्ति रहित हो कर। संसार से भागने की आवश्यकता नहीं है। जब हम ईश्वर को सुगमता से पा सकते हैं तो हम इन संकटों में क्यों पड़ें।

प्रश्न (71) मैं एक भ्रष्ट संस्था में कार्यरत हूँ। हर स्थान पर भ्रष्ट लोगों से घिरा रहता हूँ अतः ऐसे में मैं इस आध्यात्मिक–मार्ग का अनुसरण कैसे कर सकता हूँ?

उत्तर – यह व्यक्तिगत समस्यायें हैं और इनका व्यक्तिगत हल ढूँढ़ निकालने होंगे। मेरा विचार है कि उर्ध्व तत्वों से अपने को

अनुरक्त अनुभव करें, तब निम्नस्तरीय वस्तुएं स्वतः लुप्त हो जायेंगी। अपनी इच्छाशक्ति को उच्चतर की प्राप्ति में लगायें तभी निम्नस्तर का शमन हो पायेगा।

प्रश्न (72) मैं दिनभर भौतिकता से घिरा रहता हूँ। मैं उच्च विचारों की ओर अपना मन केन्द्रित नहीं कर सकता। मुझे क्या करना चाहिये?

उत्तर – सन्तों का संग करें और यदि सन्तों की संगति प्राप्त नहीं कर सकते तो ऐसे व्यक्ति का संग करें जिसका कोई व्यक्तित्व नहीं।

प्रश्न (73) ऐसा व्यक्ति तो ईश्वर–अनुकम्पा से ही प्राप्त होता है।

उत्तर – तब इसके लिए ईश्वर से प्रार्थना करें। अपने प्रश्न का उत्तर आपने स्वयं दे दिया।

प्रश्न (74) मैं एक ऐसे स्थान पर हूँ जहाँ लोग कहते हैं कि कुछ भूत रहते हैं। और मैं बहुत भयभीत रहता हूँ। मैं इससे कैसे बचूँ?

उत्तर – उनके अस्तित्व को नकार जायें और आपको भय नहीं होगा।

प्रश्न (75) कुण्डलिनी के बारे में आपका क्या कहना है? क्या आपके योग में इसका कोई योगदान है?

उत्तर – कुंडलिनी एक शक्ति है। यदि इसे जागृत कर दिया जाये तो उच्च जगत के कार्य में यह लाभदायक होती है। प्रत्येक व्यक्ति को उच्च जगत का कार्य नहीं सौंपा जाता है। अतएव यह शक्ति सभी लोगों के लिए आवश्यक नहीं है। इस प्रकार के उच्च कार्य के लिए मात्र कम या दो व्यक्ति हो सकते हैं। आध्यात्मिक–प्रगति के लिए यह आवश्यक भी नहीं है।

प्रश्न (76) बाबू जी, विद्वान की क्या महत्ता है?

उत्तर – एक विद्वान से वह कीड़ा कहीं अच्छा होता है जो किताबें खा कर चुप रहता है।

प्रश्न (77) बाबू जी Realization क्या है?

उत्तर – तुम अपने बारे में जानते हो कि तुम क्या हो परन्तु तुम

'उसके' बारे में नहीं जानते कि 'वह' क्या है। जब तुम 'उसे' जानो और उसे अपने अन्दर अनुभव करो कि 'वह' क्या है और कैसा है बस यही Realization है।

प्रश्न (78) हम यह कब समझें कि हम अहम् के बन्धन से छूट रहे हैं?

उत्तर – जब "मैं" कहते हुये 'मैं' का यह बोध नहीं मिलता कि यह किसके लिए कहा जा रहा है तब अहंता के स्थूल बन्धन से हमें छुटकारा मिल गया समझना चाहिये।

प्रश्न (79) सहज–समाधि क्या है?

उत्तर – सहज–समाधि की हालत को Negation की तिलमिलाहट कहना ठीक है। State of Moderation भी fit शब्द है। सहज–समाधि में समझ (दिव्य चेतना) रहती है, Negation में समझ नहीं रहती है।

◆